आन्ध्र के हिन्दी कवि

[आन्ध्र-प्रदेश के हिन्दी कवियों की रचनाओं का संग्रह]

सम्पादक :

डा० राजकिशोर पाण्डेय

रीडर, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय,

हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश)

समर्पण —

श्री पं० जवाहर लाल नेहरू की सत्तरवीं वर्षगाँठ

के शुभ अवसर पर आन्ध्र प्रदेश के साहित्यकारों की ओर से

सादर समर्पित

—आन्ध्र के हिन्दी कवि

सिद्ध हुई। हमें इतने कवियों की रचनाएँ प्राप्त हुईं कि बाद में पुस्तक में पृष्ठों की संख्या बढ़ाने का निश्चय करने पर भी हम सभी कवि-बन्धुओं की रचनाओं को स्थान न दे सके। इसका हमें हार्दिक खेद है। हमें इस बात का भी दुःख है कि हमें हैदराबाद के कुछ प्रतिष्ठित कवियों का सहयोग नहीं प्राप्त हो सका।

संग्रह में जिन कविताओं को स्थान दिया गया है, उनके स्तर का निर्णय तो पाठक करेंगे। किन्तु हम यह निवेदन करना चाहेंगे कि इस संग्रह का मुख्य उद्देश्य यह है कि आन्ध्र-प्रदेश के युवा कवियों को लोगों के सामने लाया जाए और इस प्रकार उनका उत्साह बढ़ाया जाए।

संग्रह में क्रम, कवियों के वय के अनुसार दिया गया है। इसमें ६५ वर्ष की आयु रखने वाले वयोवृद्ध कवि हैं और १६ वर्षों के युवा भी। कविताओं में विषय और भाषा की दृष्टि से भी पर्याप्त विविधता है। संग्रह में तेलुगु, कन्नड़ और मराठी भाषा-भाषी जिन कवियों को स्थान प्राप्त हुआ है, उनकी रचनाओं को देखने से पता चलता है कि इस अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में हिन्दी का प्रचार कार्य किस तीव्र गति से हो रहा है।

कवियों से सम्पर्क स्थापित करने तथा उनसे रचनाओं को एकत्रित करने में श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी ने जो परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके ऋणी हैं।

हम उन कवियों के अत्यन्त आभारी हैं, जिनकी रचनाओं से इस संग्रह को सजाया गया है। हम उन समस्त महानुभावों के ऋणी हैं जिन्होंने इस संग्रह के प्रकाशन में योग दिया है।

प्रकाशन-समिति के सदस्यों और इस संकलन के कवियों की हार्दिक इच्छा थी कि इस संग्रह को श्री पं० जवाहर लाल नेहरू को उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ के अवसर पर समर्पित किया जाए। ब्लाक बहुत अच्छे नहीं थे, छपाई में भी कुछ त्रुटियाँ रह गई थीं; इसलिए पण्डित जी के सामने यह तुच्छ भेंट रखते हुए संकोच हो रहा था। आज जब पण्डित जी की इस सम्बन्ध में स्वीकृति प्राप्त हो गई है, तब हम सभी लोगों को कितनी प्रसन्नता है, यह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

हिन्दी विभाग,
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद (आं. प्र.)
१४ नवम्बर, १९५९

राजकिशोर पाण्डेय
सम्पादक

क्रम

●

श्री गयाप्रसाद शास्त्री

हैदराबाद के वयोवृद्ध कवि, लेखक तथा चिकित्सक श्री गयाप्रसाद जी शास्त्री मूलतः ज़िला सीतापुर, उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। आप सन् १८९४ में पैदा हुए और आपकी शिक्षा सीतापुर तथा वाराणसी में हुई।

शिक्षा प्राप्त करने के बाद शास्त्री जी २ वर्ष तक डी. ए. वी. कालेज, देहरादून और क़रीब ६ वर्षों तक गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी में प्राध्यापक रहे। दो वर्ष तक आप हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग में प्रधानाचार्य रहे।

इधर क़रीब २५ वर्षों से शास्त्री जी का कार्य-क्षेत्र हैदराबाद है। आप हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद के संस्थापकों में से हैं। सभा द्वारा प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'अजन्ता' के प्रारंभिक कुछ वर्षों में संपादक के नाते एवं सभा के विभिन्न उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों पर रहते हुए आपने दक्षिण-भारत में हिन्दी-प्रचार के कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया है।

शास्त्री जी ने श्रीमद्भगवद्गीता पर संस्कृत एवं हिन्दी में टीकाएँ लिखी हैं तथा 'गृह चिकित्सा' नाम से स्वास्थ्य सम्बन्धी एक पुस्तक प्रकाशित की है। आपकी आयुर्वेद-सेवा तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झाँसी ने अपनी सर्वोच्च उपाधि "आयुर्वेद बृहस्पति" से आपको सम्मानित किया है।

शास्त्री जी ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली दोनों में 'श्रीहरि' उपनाम से कविता करते हैं।

अभिन्नता

जो चन्द्रिका मैं, चन्द्र तुम, मरकन्द मैं तुम फूल हो।
जो मैं विमल आनन्द हूँ, तुम एक आनन्द-मूल हो॥
मैं कल्पतरु का फल सरस जो, तुम उसी के मौर हो।
हे नाथ! कहता कौन यह, मैं और हूँ तुम और हो॥ १॥

जो मैं पतित, तुम भी पतित-पावन न मुझ से दूर हो।
जो मैं शरण, अशरण-शरण तुम प्रेम से भरपूर हो॥
जो मैं दया का पात्र हूँ, तुम-सा दयामय ठौर है।
हे नाथ! कहना कौन यह, मैं और हूँ तुम और हो॥ २॥

जो चञ्चला मैं चञ्चला हूँ, मेघ-माला तुम बने।
जो प्रेम-प्यासा मैं पथिक हूँ, प्रेम-मानस तुम घने॥
जो प्रान मैं हूँ, प्रानपति, तुम बिन न मेरी दौर है।
हे नाथ! कहता कौन यह, मैं और हूँ तुम और हो॥ ३॥

उषा

नव-नील-निचोल के घूँघट का पट खोल छटा छहरा रही है।
मुख-चन्द्र की चन्द्रिका से छिति में निज रूप-सुधा बरसा रही है॥
अलि-पुंज के गुंजन के मिष से मधु मादक गान सुना रही है।
अलबेली अकेली नवेली यहाँ यह कौन-सी रूपसी आ रही है॥

कलहंस बने नव नूपुर की ध्वनि, अंग-उमंग दुराती चली।
अलसाते सिराते सितारों की चूनरी ओढ़, जनों को भुराती चली॥
सुषमा से सनी सु-वधू सी बनी सुखसाज-समाज जुराती चली।
मनमोहनी मोहनी सी मन को मुनियों गुनियों के चुराती चली॥

मुख मंजुल लाल गुलाल लगा, मधु पी के हुई पल में मदमाती।
पहने उर में किरणावलि-हार सुहासिनी रूप-छटा छहराती॥
रवि मुग्ध हुआ है मुख-च्छवि देख, जहाँ कवि की प्रतिभा सकुचाती।
प्रिय प्रेम पगी नवरंग रंगी, यह आती उषा जग को हरषाती॥

अनुराग उमंग भरे, गुन-गीतियाँ प्रेमी विहंगम गा रहे हैं।
मधु माधवी मालती की कलियाँ पद-पंकज लाके लुटा रहे हैं॥
सजनी रजनी मुख मोड़ चली, नव-मित्र यहाँ अब आ रहे हैं।
रवि अंक में आज उषा-मुख-चन्द्र को देख सभी सुख पा रहे हैं॥

शुचि सुन्दर स्वर्णलता सी बनी सुर-सुन्दरी देख जिसे हरषाती।
हंसती, रसती, हिलती, मिलती, रुकती, झुकती प्रिय के ढिग जाती॥
जल में, थल में, वन में, मन में, नित शीतल शान्ति सुधा सरसाती।
कवि की प्रतिभा, छवि की प्रतिमा बनी रानी उषा जग-आँगन आती॥

मंगल-दीप

मङ्गल दीप जले
सुख की जगमग ज्योति जगे जग-दुःख-तम दूर टले।

विश्व प्रेम से पावन मन हो,
पर-सेवा में रत यह तन हो।
जीवन का बस इतना प्रन हो,
पर-दारा, पर-धन पर चञ्चल, कभी न चित मचले ॥ १ ॥

सुख में हँसे न दुःख में रोएँ,
धृति, संयम को कभी न खोएँ।
प्रेम-बीज वसुधा में बोएँ,
काम-क्रोध, मद-लोभ-कलुष यह अन्तर से निकले ॥ २ ॥

जग का हित अपना हित जानें,
अपने ही सम सबको मानें।
सत्य, अहिंसा का व्रत ठानें,
इन्द्रिय-जनित-विकार हृदय को, भूल कभी न छले ॥ ३ ॥

फूल हँसें कलियाँ मुस्काएँ,
जन-मन में सुख-सौरभ छाए।
निर्मल शान्ति छटा छहराए,
त्रिविध-ताप से पीड़ित अनुदिन, जग-जीवन बदले ॥ ४ ॥

कर्म-योग का दीप बनाएँ,
भक्ति-योग की बाती लाएँ।
ज्ञान-योग का स्नेह मिलाएँ,
सत्यं, शिवं, सुन्दरं का वह, पुण्य प्रकाश फले ॥ ५ ॥

कामना

दयामय ! दो इतना वरदान
भक्तिभाव से करें तुम्हारा, प्रतिपल हम गुन-गान ।

सबके सुख में निज सुख मानें ।
पर-दुःख को अपना दुःख जानें ॥
सब की सेवा का व्रत ठानें ।
लगी रहे यह लगन हृदय में, दीन-बन्धु भगवान ॥ १ ॥

काम, क्रोध को दूर भगाएँ ।
लोभ, मोह, मद पास न आएँ ॥
सबका हित नित चित में लाएँ ।
सुख दुःख में हम कभी न भूलें तुमको दया-निधान ॥ २ ॥

प्रकृति-सुन्दरी ने यह सारा ।
जड़-जंगम संसार पसारा ॥
कितना सुन्दर कितना प्यारा ।
इसके कण-कण में हम देखें, प्रभु का रूप महान ॥ ३ ॥

नील-गगन में रवि, शशि, तारे ।
जल-थल में पशु-पत्ती न्यारे ॥
तुम से ही सब गए सँवारे ।
सब में तुम हो, तुम में सब हैं, रहे सदा यह ध्यान ॥ ४ ॥

स्नेह, दया का पावन प्रन हो ।
शुचिता, मुदिता ही प्रिय धन हो ॥
त्तमा-तितित्ता-मय जीवन हो ।
विश्व-प्रेम के रंग रँगा हो, प्रभुवर तन-मन-प्रान ॥ ५ ॥

श्री रामजीवन लाल

श्री रामजीवन लाल उन भाग्यशाली लोगों में से हैं, जो लक्ष्मी के कृपा-पात्र होने पर भी सरस्वती माता के चरणों की अर्चना में गौरव का अनुभव करते हैं। श्री जीवन लाल ने अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में थोड़ी सी पूँजी से कपड़े की एक दूकान खोली किन्तु बाद में अपने परिश्रम और व्यावहारिक कुशलता से इतनी उन्नति की कि आज ये हैदराबाद के प्रसिद्ध वस्त्र-व्यापारियों में से हैं। विदेशों में स्वयं जाकर वस्त्र बनाने की कला का ज्ञान प्राप्त किया और हैदराबाद में अपने नाम पर एक कपड़े की मिल का प्रारंभ किया।

स्कूल—कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त न होने पर भी आपका अंग्रेज़ी, मराठी और गुजराती भाषाओं पर अच्छा अधिकार है और एकसठ वर्ष की आयु में भी आजकल संस्कृत, बंगला और तेलुगु भाषाएँ सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पुस्तकों के संग्रह और कविता से श्री जीवन लाल जी को विशेष प्रेम है। आपके यहाँ विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह है। कविताएँ इतनी लिखी हैं कि उनसे कई पुस्तकें बन जाएँ किन्तु ये सभी अप्रकाशित हैं। हमें आशा है, इनमें कुछ शीघ्र प्रकाश में आएँगी।

श्याम बंसी अधर धर बजाने लगे

(१)

नील से नीर के तीर पर प्रेम-धन
श्याम, बंसी अधर धर बजाने लगे।

सुध खो गोपियाँ बह सुधा में गईं
प्रेम-आँसू उमग नैन में भर गए
बाँसुरी से निकल गीत गोविन्द के
प्राण में प्यास प्रीतम सृजन कर गए
गीत के फूल वन-वन, पवन में खिले
प्रेम-गंगा धरा पर बहाने लगे।

(२)

कल्पना, सत्य का रूप धर आ गई
सार अभिसार की तान तन छा गई
गीत के तार में चन्द्रिका बँध गई
स्वर-सरित् के सलिल यामिनी न्हा गई
नेह के नृत्य के रंग में सब रँगे
गीत से मन-सुमन लहलहाने लगे।

(३)

बज उठे पाँव के घुँघरू ताल पर
खिल गए स्वेद के पुष्प हर भाल पर
मस्त हो पेड़-पौधे लगे झूमने

काकली–कूक कोयल लगी साधने
हर्ष, आनन्द का स्रोत बहने लगा
गोपियाँ, ग्वाल सुध–बुध भुलाने लगे।

(४)

हर जगह कृष्ण का रूप भासित हुआ
बाँसुरी–ध्वनि सुनाई पड़ी हर तरफ़
रोग, भय, शोक, संकट गए भूल सब
बाँसुरी जब सगुण–गीत गाने लगी
प्रेम-पोषित, अमिय-रस-पगे राग सुन
नृत्य कर बोल सब गुनगुनाने लगे।

नील से नीर के तीर पर प्रेम–धन
श्याम, बंसी अधर धर बजाने लगे।

समन्वय

(१)

तूने मुझको मन से टेरा, मैं हूँ तेरा तू है मेरा
प्रेम-पंथ तूने अपनाया, सेवा, जीवन—लक्ष्य बनाया
बन विराट सब में अपने को देखा, जग अपने में पाया
सुख-सम्पति हो गए निछावर, रूप हुआ सत्यानन्द तेरा।

(२)

देव—असुर—संग्राम विजय कर, तू लाया अमृत से घट भर
सरल अभय जीवन, विभूति-पथ, तृषा मिट गई, नव-सुख-निर्झर
जिसमें चन्दा, नव-लख तारे, नित हँस करते स्वागत तेरा।

(३)

विकल-विश्व में मोद बहादे, नूतन प्राण फूँक सरसादे
तोड़ अमर-फल आनन्द रस के, पीड़ित-जन की क्षुधा मिटा दे
बाँध मुझे भोले भावों से, सहस—कमल—दल—थल कर डेरा।

(४)

मैं हूँ सेवक भक्त-जनों का, साधक, ध्यानी, सरल हृदय का
अमर—कीर्ति, गुणी ज्ञानी की, केन्द्र कल्पना, योगी-यती का
साँस आस का, गीत हृदय का बना, किया तूने निज चेरा।

(५)

द्वन्द्व त्याग कर तूने ध्याया, निर्मल ज्ञान-बुद्धि, फल पाया
हो उन्मुक्त वासनाओं से, मन पवित्र कर ऊपर आया
स्वर्ग बँधा तेरे चरणों से, सहज रूप में हो गया तेरा
तूने मुझको मन से टेरा, मैं हूँ तेरा, तू है मेरा।

श्री भीष्मदेव शास्त्री

सच्चे अर्थों में भारत की प्राचीन संस्कृति के उपासक, सरल स्वभाव किन्तु दृढ़ निश्चयी पं० भीष्मदेव जी शास्त्री का जन्म सन् १६०४ में हुआ। आपने

लाहौर से संस्कृत में शास्त्री (आनर्स इन संस्कृत) परीक्षा उत्तीर्ण की तथा राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की। शास्त्री जी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होने के साथ हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती और अंग्रेज़ी भाषाओं के भी अच्छे जानकार हैं।

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद की स्थापना के प्रारंभिक दिनों में शास्त्री जी सभा के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। वर्षों साहित्य-गोष्ठी के अध्यक्ष रहे और सन् १६४३ से १६४६ तक कार्य-समिति के सदस्य रहे। सन् १६४३ में आप सभा के परीक्षा मन्त्री चुने गए। शास्त्री जी ने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की हैं और आशा है कि आप अपनी कविताओं का एक संकलन शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

शास्त्री जी बहुत अच्छे वक्ता हैं और सर बन्सीलाल बालिका विद्यालय, हैदराबाद में हिन्दी एवं संस्कृत के अध्यापक हैं।

वसन्त

फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते !

किसका पा सन्देश पवन ने, वन-उपवन में राग भरा है,
कलियों में छलियों-अलियों ने हँसने का अनुराग भरा है,
भर कर रस की यों पिचकारी किसके बल पर आज चलाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

किसने अपतों की पत रखने में अपना कमाल दिखलाया,
किसने डाल-डाल पर जादू डाल डाल कर जाल बिछाया,
किसको देखा बेल-बेल पर आज सितारे चाँद लगाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

किसने तितली के पंखों को इन्द्रधनुष से जोड़ दिया है,
रंग-बिरंगी तसवीरों का शीशमहल यों तोड़ दिया है,
उड़ती झूम-झूम मुख तेरा चूम-चूम, तुम पकड़ न पाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

सरदी-गर्मी के झूले में कौन झुलाता है दिन रातें,
किसने भर दी नीरवता में मधुर-मधुर जीवन की बातें,
किसको कुछ भी देर न लगती नीरस को रसलीन बनाते,
किसे देख फूले न समाते, फूले-फूल अरे मदमाते।

छूकर कर से तारिकाओं को करता कौन उन्हें शरमीली,
किसने उनके लिए बिछा दी सुख शय्या की चादर नीली,
तुमने देखा मधु-विधु को किसी अधर में ढल-ढल जाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

किसने गला गला कर भर दी सर-सरिताओं में चिर चांदी,
किसने ठहर-ठहर जल-तल में पल-पल लहर लहर लहरा दी,
चंचल लहरों में देखा क्या, एक—अनेक चाँद बन जाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

मलयाचल की मस्त हवा में नव-वसंत-सा कंत दिया है,
रह-रह विरह-कसक उठती थी, उस दुरन्त का अंत दिया है,
तुमने देखा था क्या मुझको प्रिय के पथ में पलक बिछाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

परिवर्तन-पथ में पग रखते सब कुछ, किंतु न कुछ रह जाता,
मधुरस, काल-विवश-धारा में बेचारा तृण सा बह जाता,
अपने को क्या देख रहे हो धवल हिमालय पर मुसकाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

माना रज से मिल जाना है, पर इस में ही सच्चा जीवन,
अमर हुए हैं, निज जननी को देकर कितने अपने तन-मन,
धन्य बनूंगा उन वीरों के फूलों को मैं गले लगाते,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

भारत में कैसा वसंत जब झर-झर झरते लोचन-निर्झर,
दीनों का कैसा वसंत जब प्राण, पंक बनते पिस पिस कर,
कब देखूंगा मधु का मधु-पल इस घन-दुख को मार भगाके,
फूले-फूल अरे मदमाते किसे देख फूले न समाते।

बेकारी की विविध व्यथाएँ मेरे पथ में शूल बिछातीं,
तेरी पंखडियाँ शूलों में, झूल-झूल कर रे मुसकातीं,
समझ रहा हूँ बीत गए दिन, शेष रहे जो, वे भी जाते,
फूले-फूल अरे मदमाते सदा रहो यों ही मुसकाते।

एकांत

क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई।

सिंधु की चंचल-तरंगों में पड़ी थी एक तरणी,
व्याध-से विधि-जाल में पड़कर
घिरी थी एक हरिणी,
छटपटाते देख संगी साथियों की
आंख रोई—
बह गया सुख, अश्रु बन बन
शांति जिस में आह खोई।
क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई।

देव-पथ की वीथियों में झिलमिलातीं तारिकाएँ,
अमित-पथके लौह-पिंजर में सिहरतीं सारिकाएँ,
क्या किसी अचपल करोंने ज्योति जीवन की संजोई
क्या किसी ने अचिर जीवन दीपिका इनकी संजोई
टिमटिमाती प्राण-मंदिर में
नयन-जल से भिगोई।
क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई।

उपवनों में जो सिखातीं विश्व को मुसकान, कलियां
धूल थोड़ी सी उन्हीं की भर रही, सुनसान गलियाँ,
क्या अचिर के अंक में निश्शंक सुन्दरता न सोई,
थपकियां दे दे किसी ने डाल दी लय की न लोई,
क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई।

सरस जीवन है, कहा था जिस किसी ने ठीक था क्या ?
स्वकृत-कर्मों का कुफल भी क्या कभी निर्भीक था क्या ?
वंचना ने हाय सिकता मय घटी, पल पल बिलोई
पर मिला क्या ? शून्य ! जिसने अंत की बरछी चुभोई !
क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई ।

विश्व के व्यवहार तीखे इस लिए क्या छोड़ दूँ मैं,
तट बिना पाये नियति की घट-तरी क्या फोड़ दूँ मैं,
मोड़ दूँ धारा, त्रिपथगा कह उठे मैं आज खोई
विश्व फिर एकांत बन जाए रहे क्या मुक्ति गोई,
क्यों मुझे एकांत प्यारा है बता दे आज कोई ।

डा० आर्येन्द्र शर्मा

मितभाषी किन्तु कर्मठ और अपनी लगन के पक्के डा० आर्येन्द्र शर्मा का जन्म सन् १६१० में उत्तर-प्रदेश के बदायूँ ज़िले में हुआ। शर्मा जी की प्रारंभिक शिक्षा बदायूँ और आगरा में हुई। आपने राजकीय संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी से साहित्य-शास्त्री परीक्षा तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् लगभग चार वर्षों तक जर्मनी में रह कर म्यूनिक विश्वविद्यालय से 'डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी' की उपाधि प्राप्त की।

जर्मनी से लौटने के बाद डा० शर्मा कुछ दिनों तक वाराणसी संस्कृत परीक्षाओं के सहायक रजिस्ट्रार के पद पर रहे और अब लगभग १८ वर्षों से उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं।

डा० शर्मा अभी कुछ दिनों पूर्व अमेरिका और रूस के भ्रमण से लौटे हैं। अमेरिका में आप उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ के विश्वविद्यालयों की शिक्षा-प्रणाली का अध्ययन करने के लिए गए थे और रूस में वहाँ की सांस्कृतिक-संस्थाओं के निमन्त्रण पर भारत सरकार द्वारा भेजे गए प्रतिनिधि-मण्डल के एक सदस्य थे।

डा० शर्मा हैदराबाद से निकलने वाली 'कल्पना' मासिक-पत्रिका के प्रधान संपादक हैं। इन्होंने संस्कृत में 'पंडितराज-काव्य-संग्रह' नाम से पंडितराज जगन्नाथ की कविताओं का संकलन और संपादन किया है और हिन्दी का एक विस्तृत व्याकरण अंग्रेज़ी में लिखा है, जिसे भारत सरकार के शिक्षा सचिवालय ने प्रकाशित किया है। आपकी एक और अंग्रेज़ी पुस्तक, जो संस्कृत व्याकरण के ऐतिहासिक अध्ययन से सम्बन्धित है, उस्मानिया विश्वविद्यालय से शीघ्र ही प्रकाशित होगी। डा० शर्मा का, वैदिक शब्दों पर भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्धित एक ग्रन्थ, जो जर्मन भाषा में है, इस वर्ष जर्मनी से प्रकाशित हो रहा है।

विश्व-वेदना

(१)

इन्हीं तरङ्गों-से, उर के उच्छ्वास उछलते-गिरते रहते;
इन्हीं घनों-से, स्वप्न शून्य में बनते और बिगड़ते रहते;
इन्हीं खगों-सी, मुक्त कल्पना छाया-पथ तक उड़-उड़ जाती;
इन्हीं लताओं-सी, मतवाली आशा कुसुमित हो मुसकाती।
मेरे मानस में प्रतिबिम्बित हैं जग के उन्मेष-निमेष;
मेरे जीवन में संचित हैं भावी और अतीत अशेष॥

(२)

प्रलयङ्कर तूफ़ान अचानक आते और चले जाते हैं;
जल उठतीं ज्वालाएँ सहसा, बुझतीं, अश्रु बरस जाते हैं।
घोर तमिस्रा में तारों के मणि-दीपक आश्वासन देते;
घोर विजन में किन्नरियों के गीत-स्वर अवलम्बन देते।
मेरे आँगन में प्रतिशब्दित हैं जगती के रोदन-हास;
मेरे उपवन में विकसित हैं कण्टक-तरु कुसुमों के पास॥

(३)

मैं दुर्गम पथ पर, शङ्काकुल होकर भी बढ़ता जाता हूँ;
मैं दुर्वह भारों के नीचे दब कर भी चलता जाता हूँ;
मैं दुर्लङ्घ्य अचल-शिखरों पर डगमग-पग चढ़ता जाता हूँ;
मैं दुस्तर सागर में लहरों के ही बल बहता जाता हूँ।
मेरे साहस में पुञ्जित हैं देव-दानवों के आयास;
मेरे मन्दिर में प्रतिचित्रित हैं जगती के भय-विश्वास॥

मैंने सीख लिया मुसकाना

मैंने सीख लिया मुसकाना !
जीवित रहने का उपाय कुछ और न मैंने जाना !

जग कहता, 'तूँ रो न सकेगा';
मन कहता, 'तू हस न सकेगा';
दोनों को प्रसन्न करने का
पाऊँ कौन बहाना ?
मैंने सीख लिया मुसकाना !

किस-किस सुख में निज को खोऊँ ?
किस-किस सपने को ले सोऊँ ?
किस-किस दुख को कितना रोऊँ ?
इसका प्रश्न, समस्या उसकी,
सबको है सुलझाना !

किस-किस लघु का गौरव मानूँ ?
किस-किस खल को सज्जन जानूँ ?
किस-किस 'प्रिय' का प्रेम बखानूँ ?
गुण ही गुण है गाना !
मैंने सीख लिया मुसकाना !

पोल मिली कितने ढोलों में !
ठगी भरी कितने भोलों में !
राख छिपी कितने शोलों में !

जब से इनको जाना—
मैंने सीख लिया मुसकाना।

हम नेता हैं, हम पण्डित हैं,
हम कवि हैं, हम गुण-मण्डित हैं,
मानें जो न, स्वयं खण्डित हैं—
कौन कहे 'हाँ' या 'ना'?
मैंने सीख लिया मुसकाना!

दूर बाग़ में कोयल बोली,
नेताजी ने संस्था खोली,
झगड़ा हुआ, चल गयी गोली,
उठो, काम पर जाना!
मैंने सीख लिया मुसकाना!

ये हँसने, वे लगे कलपने;
इनकी आहें, उनके सपने;
कितने क्षण हैं मेरे, अपने?
यों मन को बहलाना—
मैंने सीख लिया मुसकाना!

पल-पल करके जीवन बीता,
स्नेह-दीप हो आया रीता;
क्या चिन्ता—हारा या जीता?
यह था खेल पुराना—
मैंने सीख लिया मुसकाना!

भ्रान्ति

शूल बने कब कुसुम ? किन्तु अब कुसुम हो गये शूल !
स्वप्न स्वप्न ही रहे, हाय ! पर स्मृति कर बैठी भूल ॥

ऊषा के कोमल प्रकाश में दीख पड़ा संसार,
सोने के तारों से निर्मित, ज्योत्स्ना-सा सुकुमार।
दोपहरी के आतप में देखा उसका आकार,
कान्ति-हीन पर ज्वालामय, पाषाण किन्तु निःसार।
सन्ध्या की धूमिल-छाया में शेष रह गयी धूल,
यही कामना है, ढँक ले अब इसको रजनि-दुकूल ॥

मृग-माया को मैं समझा सरिता का निर्मल नीर,
सागर के क्षितिजों पर उठती क्रूर लहर को तीर।
रत्न जिन्हें समझे बैठा था, वे निकले पाषाण,
चीत्कारों की अस्फुट ध्वनि को मान लिया था गान।
शीतल. मन्द समीर बना भीषण झंझा प्रतिकूल,
जीवन के आधार सुदृढ़ उड़ गये हाय बन तूल ॥

इन्द्र-धनुष के सात रङ्ग थे, चार क्षणों की भ्रान्ति,
पल भर ही टिक सकी ओस की हीरक-जैसी कान्ति।
डूबी जग के कोलाहल में मुरली की मृदु तान,
चल-चित्रों में कहीं खो गयी कुसुमों की मुसकान।
आज देख पाया हूँ मैं सरिता के दोनों कूल,
आज हो गयी मृदुल कल्पना मूल-सहित उन्मूल ॥

श्री मधुसूदन चतुर्वेदी

श्री मधुसूदन चतुर्वेदी का जन्म ज़िला आगरा, उत्तर-प्रदेश में सन् १६१० में हुआ। आपकी हाईस्कूल तक की शिक्षा गवर्नमेंट हाईस्कूल मैनीपुरी में हुई और आपने आगरा कालेज, आगरा से एम. ए. की परीक्षा पास की।

श्री चतुर्वेदी कुछ दिनों तक हैदराबाद से निकलने वाले 'उदय' साप्ताहिक के सम्पादक रहे। और आजकल बालिका विद्यालय बेगम बाज़ार, हैदराबाद के प्रधान आचार्य हैं।

श्री चतुर्वेदी हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद के संस्थापकों में से हैं। सभा की ओर से आयोजित होने वाली साहित्य-गोष्ठी का श्रीगणेश आपके प्रयत्नों से हुआ। बहुत दिनों तक आप साहित्य-गोष्ठी के संयोजक रहे और सन् १६४६ में सभा के प्रधान-मन्त्री निर्वाचित हुए। आपके मंत्रित्व-काल में सभा के प्रयत्नों के फलस्वरूप हैदराबाद राज्य में हिन्दी-पत्र निकालने की अनुमति मिली और निजी पाठशालाओं में सातवीं कक्षा तक हिन्दी-माध्यम से पढ़ाने की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

श्री चतुर्वेदी एक कुशल अध्यापक, कवि, लेखक और आलोचक हैं। आपने टामस हार्डी के 'टैस' नाम के उपन्यास का हिन्दी में 'ग्वालिनी' नाम से अनुवाद किया है एवं 'झाँसी की रानी' नाम का नाटक और 'साहित्य' नाम से आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह प्रकाशित किया है।

श्री चतुर्वेदी की कुछ और पुस्तकें निकट भविष्य में प्रकाशित होने वाली है, जिनमें 'मंजरी' (कविताओं का संग्रह), विश्राम (नाटक) और 'प्रसाद' (आलोचनात्मक निबन्ध) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

परिचय

'मैं क्या हूँ'—यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

मैं मनुष्य हूँ! मनुष्यता का क्यों इतना उपहास बनाना,
पर-हित-साधन में कब मैंने हर्ष-सहित मर मिटना जाना।
दुःख-कातर दुखियों को देखा, कब मैंने अपने सुख छोड़े,
दया-श्रोत कब उर से उमड़ा, कब माया के बन्धन तोड़े।

मैं क्या हूँ—यह जान न पाया,
विशद विश्व में क्यों मैं आया।

मैं लेखक हूँ! नहीं, न मैंने जग में जीवन-ज्योति जगाई,
नबयुवकों के मानस में कब बलि होने की आग लगाई।
दीनों के विदग्ध-उर को कब मिली सान्त्वना मेरे कर से,
आसन डोले भूपालों के कब मम क़लम-नोंक के डर से।

मैं क्या हू—यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

मैं कवि हूँ! क्यों विश्व-रचयिता को कलङ्क से म्लान बनाते,
कब उस प्रभु की विमल-कीत के कवि बन कर तुम गायन गाते।
सुन्दरियों के हाव-भाव में कविता रस का क्या आस्वादन,
जगा न देते क्यों मानस में दीन-हीन का करुण-क्रंदन।

मैं क्या हूँ—यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

मैं छोटे से छोटा तृण हूँ, प्रबल वायु के जिसे झकोरे,
इस जीवन से उस जीवन में पल-पल पर रहते हैं घेरे।
नहीं विराम कहीं मिल पाता, इस तट से उस तट को जाता,
कभी सुरों के सिर चढ़ जाता, कभी धूल में हिल-मिल जाता।

मैं क्या हूँ —यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

मैं लघु कण हूँ, इस जगती का एक अंश हूँ सबसे छोटा,
जिनसे मिल कर बना हुआ है विशद-विश्व यह इतना मोटा।
मेरा कुछ अस्तित्व नहीं है, नियति नचाती जैसे चाहे,
जो सेवाएँ ले सकती है, लेती रहती जब मन चाहे।

मैं क्या हूँ —यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

'शून्य समझ लो मुझे'— किन्तु मैं क्या न गणित का हो सकता हूँ,
कहीं मूल्य दस गुना बनाता, कहीं स्वयं ही खो सकता हूँ।
शून्य बना हूँ—शून्य समझ कर, मत मेरा उपहास बनाओ,
मत पूछो मैं क्या हू —परिचय पाकर भी 'मधु' मत पछताओ।

मैं क्या हूँ—यह जान न पाया,
विशद-विश्व में क्यों मैं आया।

निर्झर

झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर,
निर्झर का यह सुख-मय मरमर।
नीरव अवनी, नीरव अम्बर,
नीरव हिमगिरि का उच्च शिखर,
नीरव पादप, नीरव प्रसून,
नीरव भ्रमरावलि शब्द-हीन,
नीरव निशि-पति, नीरव रजनी,
नीरव समीर मृदु-गति-वहनी,
नीरव विहंग, नीरव विषाण,
नीरव विरही के व्यथित-प्राण।
नीरव में रव भरते निर्झर,
झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर।
रवि-किरण-जाल भू पर आया,
मृदु हास प्रकृति पर है छाया,
पंकज–पंखड़ियाँ खुल खुल कर,
अलि-दल का मृदु आलिङ्गन कर,
सञ्चित मधु का कुछ वितरण कर,
गुनगुन–गायन मन भर सुन कर,
अनुपम शोभा रच ही डाली,
क्या धूम मच रही मतवाली।
सङ्गीत अमर गाते निझर,
झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर।
दिनकर की किरणें हुईं प्रखर,
सुकुमार–प्रकृति यह सह न सकी,

घन-पटल क्षितिज पर घिर आए,
वह उग्रता ताप की रह न सकी,
नन्हीं-नहीं बूँदें बरसीं,
पत्रावलि से मुक्ता बिखरे,
हरियाली धुल कर स्वच्छ हुई,
पादप, प्रसून, पल्लव निखरे।
पर स्थिर न हुए पल को निर्झर,
झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर।
लालिमा गगन पर फैल गई,
सन्ध्या ने शुभ-शृंगार किया,
सरिता के दोनों कूलों पर,
सुषमा ने आ अवतार लिया,
हिम-आच्छादित गिरि-शृंगों पर,
वे इन्द्र-धनुष विचरण करते,
इस रंग-विरंगी आभा का,
आकर अनुपम दर्शन करते।
अनुरञ्जित हो गाते निर्झर;
झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर।
गिरि के शृंगों से पिघल-पिघल,
पाहन-से उर पर उछल-उछल,
घाटी-अञ्चल में मचल-मचल,
सरिता में झाग उठा फेनिल,
छिटका तट-तरु पर नव-फुहार,
चित्रित कर वर्ष की बहार,
कोमल-किशलय मुख चूम चूम,
चंचल लहरों में झूम झूम,
उन्मत्त बने गाते निर्झर।
झर-झर झर-झर झर-झर झर-झर॥

श्रीमती इन्दिरा देवी

श्रीमती इन्दिरा देवी का जन्म सन् १९१० ई. में जिला सीतापुर (उत्तर-प्रदेश) में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता पं० शंकरप्रसाद जी पाण्डेय अत्यन्त धार्मिक विचार के थे। अतः आपकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई।

आपका विवाह सन् १९२५ ई. में श्री गया-प्रसाद जी शास्त्री के साथ हुआ। आपके सम्पर्क में आकर आपने संस्कृत व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन किया तथा आयुर्वेद की जानकारी प्राप्त की। श्रीमती इन्दिरा देवी ने विवाह के पश्चात् लखनऊ में "नारी-आरोग्य-मन्दिर" की स्थापना की और अपना अधिक समय महिलाओं की सेवा में लगाती रहीं। विगत २० वर्षों से आप हैदराबाद नगर में "नारी आरोग्य मन्दिर" की स्थापना करके महिलाओं की सेवा कर रहीं हैं।

नारी आरोग्य मन्दिर के कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी श्रीमती इन्दिरा देवी का झुकाव साहित्य-निर्माण की ओर बराबर बना रहा। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं।

उत्कम्प

कैसी यह कराह उठती है, सखि ! इस नीरव वन में ।
क्यों घबराता जाता है, हृदय-कमल छन-छन में ॥
जीवन-तन्त्री के तारों में, क्यों ऐसी झन-झन है ।
कैसा विषम चल रहा है यह, वायु-वेग सन-सन है ॥

होता क्यों मशान में शिव का, तांडव आज नगन है ।
किस दुखिया की आहों से, हिलता हुआ गगन है ॥
कैसा घोर दवानल है यह, वसुधा क्यों हिलती है ।
क्यों यह प्रलय-शिखा धू धू कर, धधक धधक जलती है ॥

सुमन

सुमन ! तुम सुखी एक संसार,
स्नेहमयी लतिका के तुम हो, शुचि सुन्दर शृङ्गार ।

मधु लोभी, मतवाले, मधुकर, करते मृदु गुंजार ।
वार रहे हैं तन, मन, तुम पर, कैसा भाग्य अपार ॥

रसिकों के तुम जीवन-धन हो, प्रणयि-जनों के प्यार ।
ललनाओं के हृदय लगे हो, बन कर मंजुल-हार ॥

देवों के मस्तक पर चढ़ते, बन पूजन-संभार ।
भक्त और भगवान् सभी तो, हैं तुम पर वलिहार ॥

जिज्ञासा

कैसे तुम्हें बुलाऊँ प्रियतम, कहाँ बिठाऊँ दीन महा।
कैसे करूँ तुम्हारा स्वागत, विश्व-विभव से हीन महा॥
अश्रु-विन्दु के मोती लेकर, प्रिय को चली मनाने को।
मेरे मानस-राजहंस, तुम, भूल न जाना आने को॥

तरल त्रिवेणी की तरंग में, त्रिविध ताप हरने को।
परम प्रेम-मन्दिर में आई, पद-पूजा करने को॥
अतुलित आशाओं को लेकर, चुन-चुन कर कलियों को।
तुम्हें चढ़ाने को लाई हूँ, इन सुमनावलियों को॥

निरवलम्ब-अवलम्ब नाथ हो, स्नेहसुधा-सागर हो।
पुण्य-प्रेम-प्रतिमा, गुन-आगर, नटवर नटनागर हो॥
मधुर प्रेमरस के तुम प्यासे, प्रीति-रीति के पाले।
फिर भी सुनती देव, आपके हैं कुछ पन्थ निराले॥

रीझ-खीझ की रीति अनोखी, सीख कहाँ से आए।
अपना कर ठुकराने की यह, कला कहाँ से लाए॥
आते जो जन निकट तुम्हारे, उनसे आँख चुराते।
रहते दूर, दौड़ कर उनको, अपने अंक लगाते॥

लीलापते, तुम्हारी लीला, मुझ से कही न जाती।
गुण-सागर के गुण-गौरव का, पार नहीं मैं पाती॥
आँखमिचौनी क्यों करते हो, मुझसे, क्या उत्तर है?
देव, बताओ सचमुच ही क्या, हृदय तुम्हारा पत्थर है॥

श्री एकनाथ प्रसाद

श्री एकनाथ प्रसाद का जन्म सन् १९१२ में हैदराबाद के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ। आपके पिता और पितामह दोनों निज़ाम के शासन-काल में ऊँचे पदों पर रह चुके थे। आपके मँझले चाचा श्री सद्गुरु प्रसाद उर्दू और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे और 'रहबर' उपनाम से कविता करते थे।
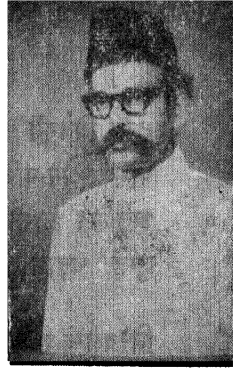
घर में उर्दू फ़ारसी का वातावरण रहने के कारण श्री एकनाथ प्रसाद जी ने पहले उर्दू और फ़ारसी भाषाएँ सीखी और 'अदीबे कामिल' की परीक्षा पास की। पिताजी को रामायण से प्रेम था। घर में यदा-कदा रामायण का पाठ भी हुआ करता था। इससे श्री एकनाथ जी का ध्यान हिन्दी सीखने की ओर प्रवृत्त हुआ। बाद में इन्होंने साहित्य शिरोमणि और साहित्यालंकार परीक्षाएँ पास कीं।

श्री एकनाथ प्रसाद 'नाथ' उपनाम से कविता करते हैं और इन्होंने अपनी बहुत सी कविताएँ और निबन्ध स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। कविता के अतिरिक्त संगीत और नाटक में आपको विशेष रुचि है।

श्री एकनाथ प्रसाद आजकल आन्ध्र राज्य के उद्योग विभाग के सचिवालय में अधीक्षक पद पर कार्य कर रहे हैं।

प्रतिज्ञा

कलिकाल--व्याल को खा जाऊँ,
बन आज गरुड़ मैं छा जाऊँ।

मैं भव-भय-भूत भगाने को,
सन्ताप--कलाप मिटाने को,
दुख दारिद्रय हटाने को,
जगती को सुखी बनाने को,

दाँतों से पीस चबा जाऊँ,
कालिकाल--व्याल को खा जाऊँ।

लावण्य रूप की मादकता,
आभूषण, धन की लोलुपता,
ब्रह्मांडों की संचित सत्ता,
इनका न दाव मुझपर चलता,

माया को पल भर में भस्म बना जाऊँ,
कलिकाल--व्याल को खा जाऊँ।

मार्क्स, मेकाले से हमको क्या,
चर्चिल, लेनिन, लिङ्कन से क्या,
ट्रूमेन, हूवर, ईडन से क्या,
मालनकोव, स्टालिन से क्या,

भारत हित इन से क्या पाऊँ,
कलिकाल--व्याल को खा जाऊँ।

जग में वादों के हैं पचड़े,
ये छूने योग्य नहीं चिथड़े,
छोड़ो इनको क्या काम अड़े,
जा नर्क-कुण्ड में कौन पड़े,

पापों का पुञ्ज जला आऊँ,
कलिकाल-व्याल को खा जाऊँ।

क्या कर सकता 'राकेट फाइटर',
आज हृदय 'जन' का बम लेकर,
साहस रूपी 'डेथ--रे' लेकर,
आत्म-प्रेम का 'ऐटम' लेकर,

अखिल--विश्व को अपना पाऊँ,
कलिकाल--व्याल को खा जाऊँ।

श्रीमती सुशीला देवी

आन्ध्र-प्रदेश की महिलाओं में जागृति उत्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील श्रीमती सुशीला देवी का जन्म सन् १६१६ में हुआ। आपके स्वर्गीय पिता श्री मुंशीराम जी दुसाज अपनी सार्वजनिक-सेवाओं के लिए सिकन्दराबाद के नागरिकों में अब भी बड़े सम्मान के साथ स्मरण किए जाते हैं।

श्रीमती सुशीला देवी कन्या-गुरुकुल, देहरादून की स्नातिका हैं और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की साहित्य-रत्न परीक्षा उत्तीर्ण हैं। आपने आन्ध्र-प्रदेश की राजनीतिक गति-विधि में बराबर दिलचस्पी ली है और आपको अपनी निस्पृह समाज-सेवा के कारण प्रान्त के नागरिकों में पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त हुई है।

सार्वजनिक कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी श्रीमती सुशीला देवी की साहित्यिक-रुचि में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई है। आपको कविता से प्रेम है और पत्र-पत्रिकाओं में आपके निबन्ध प्रायः प्रकाशित हुआ करते हैं।

श्रीमती सुशीला देवी ने 'पूँजीवाद समाज और वेद' तथा 'संस्कृत कवियों का वाणी विलास' नाम से दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

प्रथम-प्रयास

आप ही कहिए कि कविता क्या सुनाऊँ,
किस तरह निज कल्पना को कृति बनाऊँ।
क्या वही मीठे प्रणय के गीत गाऊँ,
या विरह के हृदय-द्रावक चित्र लाऊँ॥

मिलन की मधुमय रंगीली तान छेड़ूँ,
मानिनी के मान से या हृदय जोड़ूँ।
हाय, ये तो हैं सभी बातें पुरानी,
रात-दिन कवि लेखनी ने जो बखानी॥

इस नए युग में न यह सब चल सकेगा,
भूख के भय से न यह सब पल सकेगा।
वस्त्र तक तन ढाँकने को जो न पाता,
पेट को दो रोटियाँ भी दे न पाता॥

वह तड़पता है, बिलखता है, न गाता,
नग्न-तन को क्षुब्ध मन को क्या सुहाता?
अनय, अत्याचार सदियों तक सहा है,
चिर–गुलामी अनल से जलता रहा है॥

किन्तु उसकी वेदना किसने बखानी,
दीनता से दलित मानव की कहानी।
आज का मानव मनुजता का भिखारी,
पर मनुजता मुँह छिपाती है बिचारी॥

मनुजता है ही कहाँ जिसको पुकारूँ,
दीखते दानव जिधर पलकें उठाऊ।
वश चले तो दानवों का दलन कर दूँ,
युग-युगों से पीड़ितों को मुक्त कर दूँ॥

जालिमों के जाल को मैं तोड़ डालूँ,
पीड़ितों पतितों के बन्धन खोल डालूँ।
लद गए वे दिन कि कुछ कहने न पाऊँ,
आप ही कहिए कि कविता क्या सुनाऊँ॥

तुलसीदास के प्रति

कैसे गाऊँ तव गुण--गाथा,
राम--नाम के अमर गवैया,
हुलसी के सुत कहो तुम्हारी,
कैसे लिख दूँ गुण सतसैया।

राम नाम के मन्त्र--द्रष्टा,
सिया--राम के अमर पुजारी,
आर्यजाति के हे उद्धारक,
तुम पर जग जावे बलिहारी।

तुम कहते हो—राम ईश हैं,
सकल जगत् के हैं संचालक,
राम—नाम ही है इस जग में,
त्रिविध-ताप-नाशक सुख-दायक।

अमर आदेश दिया था तुमने—–
जाके प्रिय न राम वैदेही,
तज दो उसको कटु-वैरी सम,
यद्यपि हो वह परम सनेही।

आज जगत है दूर राम से,
"सेक्युलरिज्म" का जोर चला है,
खाओ पीओ मौज करो का—–
नारा आज बुलन्द हुआ है।

हमें बचाया था तुमने ही,
जब मन का अज्ञान बढ़ा था,
राम-नाम का मन्त्र-दान कर,
जब तुमने भव-भार हरा था।

"पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं"
कह कर जब उत्साह बढ़ाया,
मृत-प्राय भारत जनता में,
नव–जीवन संचार कराया।

राम-चरित-मानस की रचना,
तो बस इक वरदान बनी थी,
विनय पत्रिका के गीतों में—
भी तो अद्भुत भक्ति भरी थी।

धन्य हुए कौशल्या के सुत,
धन्य हुई वह सीता माता,
हुई धन्य भगवती शारदा,
धन्य तुम्हें पा भारत माता।

श्री चाँद्मल अग्रवाल

श्री चाँदमल अग्रवाल का जन्म सन् १९१६ में औरंगाबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा औरंगाबाद में ही हुई और वहीं से आपने इण्टरमीडियट परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की साहित्य-रत्न उपाधि प्राप्त की।

श्री अग्रवाल का झुकाव बचपन से ही साहित्य-निर्माण की ओर रहा। आपने सन् १९३२ में अपनी पहली कहानी नवजीवन में प्रकाशित की और पहली कविता 'कोयल के प्रति' सन् १९३७ में प्रकाशित की।

श्री अग्रवाल की तीन पुस्तकें—चित्रांगदा (खण्ड-काव्य), जुगनू (मुक्तक-काव्य) और चन्द्र किरणें (गद्य) प्रकाशित हो चुकी हैं और निकट भविष्य में कुछ और पुस्तकों के प्रकाशित होने की आशा है, जिनमें सुवर्ण-तुला (नाटक), पद्मिनी (खण्ड-काव्य) और कैकेयी (प्रबन्ध-काव्य) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त आपने सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुत से आलोचनात्मक निबन्ध, कविताएँ और प्रहसन प्रकाशित किए हैं एवं रघुवरचित्र निकेतन द्वारा सन् १९५६ में निर्मित फिल्म 'हरिहर-भक्ति' में गीत एवं संवाद लेखन का भी कार्य किया है।

श्री अग्रवाल को सार्वजनिक कार्यों में विशेष रुचि है। आप इस समय बहुत-सी सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्य करने वाली संस्थाओं में विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे हैं।

गीत

कोकिले ! तू कूकती क्यों आज भी है ?
आ गई वर्षा विरहमय, जा चुका ऋतुराज भी है ॥

मेघ, उमड़े घुमड़ते, नभ, साज सतरंगी सँजोया ।
मेदिनी आँचल हुआ तर, उधर विरही-गगन रोया ॥
विकल-मन-सरिता चली चंचल अधिक हो तिलमिलाती ।
शांत, स्थिर-जल जलधि ने भी देख मन का चैन खोया ॥

छा गई काली घटाएँ, तड़प उठती गाज भी है ।
आ गई वर्षा विरहमय, जा चुका ऋतुराज भी है ।
कोकिले ! तू कूकती क्यों आज भी है ?

मौर आमों पर नहीं अब, पवन-गति में है न मस्ती ।
सुमन पलकें सिक्त हैं, न नलिन-चिबुक अलिनी परसती ॥
मन लिए बोझिल उषा, संध्या थकी-माँदी हरी-सी ।
यामिनी आँखें रहीं प्रिय 'चन्द्र' दर्शन को तरसतीं ॥

विरह-व्यथिता प्रकृति में अब वह कहाँ अंदाज़ भी है ?
आ गई वर्षा विरहमय, जा चुका ऋतुराज भी ॥
फिर कोकिले ! तू कूकती क्यों आज भी है ?

जुगनू

अरे, क्या उतरे तारे आज—
छोड़ कर नीला अम्बर-देश ?
कर रहे भू पर सतत प्रवेश
अँधेरे पर करने को राज ॥

मुझे तो होता ऐसा भान
वियोगी-जन को करने क्षार—
कहीं शशि उगला हो अंगार,
अग्नि-कण ये हैं पड़ते जान ॥

नहीं, तो क्या टूटा निशि-हार ?
पड़े ये जिसके बिखर प्रसून ।
निशा-पति की है अरे चमू न ?
नहीं बरसा निशि में अङ्गार ॥

क्या कहा ? निशि के हैं ये बाल,
खेलते धरती पर सविनोद ।
बालकों में बस रहता मोद,
वहाँ क्या जगती का जंजाल ॥

त्रस्त हो देशी-प्रजा समान,
चले या तुम प्रदेश निज छोड़ ?
लगी अथवा कुछ तुममें होड़ ?
दौड़ते हो जो यों नादान ॥

भागते क्यों कायर से भीत ?
न करते डट कर क्यों घमसान ?
हुआ रिपु कितना भी बलवान—
तो न क्या सब मिल सकते जीत ॥

अँधेरे में निज पति को रात—
जला कर दीप रही है ढूँढ़ ।
कुञ्ज में, लता-भवन में मूढ़,
यही होता है कुछ-कुछ ज्ञात ॥

तारिकाए थीं अहा सहास,
और प्रमुदित थे अतिही चन्द ।
छलकता स्नेह, भरा आनन्द,
रचाये थे वे मिल कर रास ॥

चढ़ा था जब यों वहाँ सु-रंग,
तभी खिसके धीरे--से चन्द ।
हो गई सारी क्रीड़ा बन्द,
उड़ा उन सब के मुख का रंग ॥

वही बालाएँ हैं ये हाय !
लता-गुल्मों के जाकर पास-
पूछतीं शशि का पता उदास,
ढूँढतीं वन-उपवन निरुपाय ॥

विकट लख या जीवन-संग्राम,
भगे जाते हो बने उदास ?
विपिन में, कहीं सरित के पास—
रमा धूनी क्या खोने ताप ॥

या कि है कुछ और रहस्य ?
कहो न, कहो भी जुगनू नेक,
खोजते किसको क्षण प्रत्येक ?
तुम्हारा प्रिय है कौन प्रशंस्य ॥

वियोगी-से, व्याकुल-से, दीन,
ठगे-से, अकुलाए-से, और—
भगे-से, निकले-से बेठौर,
भटकते धुन में लीन, मलीन ॥

हुआ है देखो असित शरीर,
अनमने-से रहते चुपचाप।
आह ! क्षण-क्षण पर जाते काँप;
हृदय में कैसी रे यह पीर ॥

छले-से फिरते हो अविराम,
जले-से रहते क्यों बेचैन ?
निकलता दिन, जब होती रैन;
कहाँ दुखियों को हा ! विश्राम ॥

न होते फिर भी 'चन्द्र' हताश,
सदा फिरते निज धुन में व्यस्त।
गए हो भी तो तुम अभ्यस्त,
मिलन की प्रिय के है जो आस ॥

श्री शिवदयालु 'भ्रमर'

श्री शिवदयालु 'भ्रमर' का जन्म १६ अक्तूबर, १६१७ को उत्तर-प्रदेश में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा खुर्जा कालेज, खुर्जा में हुई और बाद में आपने पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर (हिन्दी आनर्स) परीक्षा पास की।

बचपन से ही श्री शिवदयालु 'भ्रमर' का झुकाव साहित्य निर्माण के साथ राजनीति की ओर रहा। छात्रावस्था में आपने कुछ कहानियाँ लिखीं और उन्हें स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की। सन् १६४१ में युद्ध विरोधी सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको ६ मास की कारा-वास की सज़ा मिली।

जेल से छूटने के बाद श्री शिवदयालु जी ने व्यापार प्रारंभ किया उसमें आपको काफ़ी लाभ रहा, किन्तु बाद में घाटा लगने के कारण घर की पूँजी भी गवाँ बैठे। जीवन की कठिनाइयों और संघर्षों से इन्हें कविता करने की प्रेरणा मिली। आप 'भ्रमर' उपनाम से कविता करते हैं और हैदराबाद के लोगों में इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्री 'भ्रमर' ने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की हैं और इनकी कविताओं के दो संग्रह 'छलकते आँसू' और 'अभियान' नाम से शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं

श्री 'भ्रमर' ने कुछ दिनों तक हैदराबाद से निकलने वाली 'अजन्ता' पत्रिका में व्यवस्थापक पद पर कार्य किया, कुछ दिनों तक भारत सरकार के कार्यालयों में हिन्दी अध्यापन का कार्य करते रहे और इस समय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा संचालित 'हिन्दी महाविद्यालय' में अध्यापक हैं।

गीत

कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

पास जलाशय के रहते भी पत्थर बन बैठा हो माली;
तुम ही कह दो, फिर उपवन में धूल उड़ेगी या हरियाली।
तुम ही पत्थर-माली बन कर उस उपवन से पूछ रहे हो।
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

मुस्कानों से काटी जाती है जिनकी मुस्कान यहाँ पर;
रोज बुलाती है जिनको मुस्कानों की तलवार यहाँ पर;
तुम्हीं बुलाने वाले उनकी मुस्कानों से पूछ रहे हो।
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

"किसने कैसी आग लगाई आग न अब तक बुझ पाई है?
धधक रहा है किसका घर और किसकी हँसती अँगडाई है?"
तुम ही आग लगाने वाले जलते घर से पूछ रहे हो।
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

इन्सानी आँखों से अपने जलते घर को देख रहे हैं;
आज जिगर की पकती चोटों को चोटों से सेंक रहे हैं।
बिगड़ी हालत में तुम बिगड़े उपचारों से पूछ रहे हो।
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

परवानों का मर्म-कोश जब-जब जलते देखा जाता है;
दीपक-लौ का नाम तभी नफरत के साथ लिया जाता है।
तुम ही जड़, पर बैठे बैठे जड़-चेतन से पूछ रहे हो।
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

चीख, पुकारों का चिन्तन जब सीमा का बन्धन तोड़ेगा;
कोटि-कोटि परवानों का दल लौ की हिंसा को मोड़ेगा।
क्या आने वाले परवानों के शासन से पूछ रहे हो?
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

नित आने वाले ग्रहणों से रवि, शशि का उर फूट रहा है;
बहुत दिनों का, युगों-युगों का संचित धीरज टूट रहा है।
बोलो, हम से पूछ रहे हो या प्रलय से पूछ रहे हो?
कैसा है अब रूप हमारा, तुम ही हम से पूछ रहे हो।

दिल का हाल

तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं?

जिसको मधुरितु कूट रही है, जो मधुरितु को ठेल रहा है;
जिससे पतझर अंगारों की होली झर-झर खेल रहा है;
उससे पूछो, जीवन का कजरारा फाग किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

यदि सुन्दर की अनुपम उपमा दुर्घटना बन कर रहती है;
जलते मुर्दों से ही फिर शमशानों की शोभा बढ़ती है;
हमें पता है सुन्दरता की काली याद किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

जाँच लिया है हमने तुमको, वादों पर अब जा न सकेंगे;
कितने भी तुम करो इशारे, सुनलो, अब हम आ न सकेंगे;
तुम्हें पता क्या एक घायल का घायल प्यार किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

हमने पूरा साथ निभाया, साथ तुम्हीं ने पहले छोड़ा;
था सीधा-सा प्यार हमारा, प्यार तुम्हीं ने पहले तोड़ा;
तुम्हें पता क्या अपने साथी का परिहार किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

सुन लो बल की जीत हमेशा बल की ही दुश्मन होती है;
गिर-गिर कर ऊपर उठने वालों की जीत बड़ी होती है;
हमें पता है रवि पर घन की घटिया जीत किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

और सुनो तुम, सदा समझदारों की जग में हार हुई है;
और सदा ही शर्म भरे नयनों से जल की धार बही है;
हमें पता है ग़म खाने वालों का मरण किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

नफ़रत की नज़रों का मारा नफ़रत से घुल मिल जाता है;
प्यार नहीं मिल पाता जिसको वह भी पागल हो जाता है;
तुम्हें पता क्या चिनगारी की उड़ती चमक किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

हैं इन्सानी जख्म हमारे, जलते भी हैं, रिसते भी हैं;
है इन्सानी प्यार हमारा, दुनियाँ पर हम मरते भी हैं;
हमें पता है दुनियाँ में इन्सानी होश किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

यदि दुनियाँ में पेट जलेगा, आग जलेगी, घातें होंगी;
कविता में भी कफ़न, चिता और तूफ़ानों की बातें होंगी;
कवि से पूछो, पोषण पर शोषण की मार किसे कहते हैं;
तुम्हें पता क्या बरबादों के दिल का हाल किसे कहते हैं।

श्री द्वारिकानाथ त्रिपाठी

श्री द्वारिकानाथ त्रिपाठी का जन्म १७ अक्टूबर १६१७ को उत्तर-प्रदेश में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा आजमगढ़ में हुई और बाद में आपने हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी से हिन्दी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

श्री त्रिपाठी हिन्दी और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। आपका ज्योतिष पर अच्छा अधिकार है और आप संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण हैं।
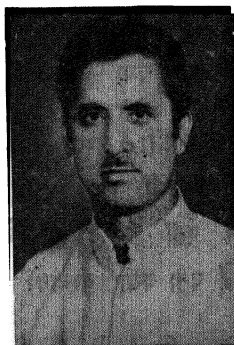
शिक्षा समाप्त करने के बाद श्री त्रिपाठी कुछ दिनों तक आजमगढ़ के एक इण्टरमीडियट कालेज में प्राध्यापक रहे और आजकल केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी-शिक्षण योजना के अन्तर्गत प्राध्यापक हैं।

श्री त्रिपाठी ने बहुत से निबन्ध एवं कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। आपकी 'साहित्य-सुधा' नाम की पुस्तक आन्ध्र-प्रदेश के हाईस्कूलों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है। आपकी एक और पुस्तक 'कुशासन का अन्त' (खण्ड-काव्य) शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

श्री त्रिपाठी एक अच्छे वक्ता हैं और भारतीय गाँवों की समस्याओं में आपकी विशेष रुचि है। अपने सरल स्वभाव और विनम्रता, किन्तु विचारों की दृढ़ता के कारण आपको हैदराबाद के नागरिकों में पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त हुई है।

निर्झर

वन के निर्जर आँगन में,
गौरव-मय गीत सुनाने;
यह कौन लगा है मधुमय—
पंचम में छेड़ तराने।

श्यामल दूर्वादल ऊपर,
मोती का हार सजा कर;
यह कौन समेट रहा है,
धीरे से उसे लजा कर।

ऊषा की कोमल लाली,
किसका अनुराग बढ़ाती;
संध्या किसको झाँकी दे,
चलती है यों बल खाती।

हिल-मिल कर मंद प्रभंजन,
शीतलता किससे लेता;
जा ललित-लता झुरमुट में,
जग को वश में कर लेता?

छम छम छम चंचल गति से,
मादकता-मय कर नर्तन;
यह कौन मदिर-दृग से है,
करता मानस परिवर्त्तन।

मोती दो-चार दिखा कर,
बनता समुद्र रत्नाकर;
क्या नाम धराएगा तू,
अगणित-मुक्ता बरसा कर।

व्यवहित वर्षा से बादल,
जब देता जग को जीवन;
क्या दे न सकेगा तू जो,
बरसा करता आजीवन।

यद्यपि निर्भर कहलाते,
पर झर-झर झरते रहते;
हो अचल-सुवन पर तो भी,
संतत ही चलते रहते।

झर ना तुमसे कहते हैं,
पर तू झरना क्यों छोड़े;
प्रस्रवण कहे जाते हो,
पर रहते श्रवण मरोड़े।

जल में है अमित मधुरिमा,
तो भी लावण्य घना है:
है पतन निरंतर होता,
तो भी आदर्श बना है।

संसृति में चाहे कोई,
सोए जागे या भागे;
पर निश्चल-वृति से हो तुम—
अपनी गति में अनुरागे।

छल-छल जल उछल उछल कर,
कहता है अमर कहानी;
कल ढल जाएगी ढुलमुल—
चढ़ती जो आज जवानी।

पाषाण हृदय या गल गल,
अपने को सरस बनाता;
इस रसा सरसता कारण,
सच्चा आधार बनाता।

या वसुधाधर वसुधा पर,
है सुधा-धार बरसाता;
अपनी अनंत माया यों,
धाराधर को दिखलाता।

या रजत-राशि पिघला कर,
गिरि-वर है सदा गिराता;
द्विज-गन स्वच्छन्द हिला कर,
सर हिला हिला मुस्काता।

या क्षमा जगत क्रन्दन पर,
हो क्षुब्ध अहो रोती है;
यों मानवता का कज्जल,
आँसू जल से धोती है।

हे उत्स उचित उत्साही,
अपने सम जग को कर दो;
शीतलता अपनी सारी
मानव के उर में भर दो।

शून्य

कौन है विधि विधान का आदि, शब्द का क्या है मूलाधार ?
किसे कहते अनन्त अविभाज्य, अन्त में कौन प्रलय का सार ?
कहाँ देवों का दिव्य निवास, शक्ति का कौन अतुल आगार ?
एक गुण पर भी गुणी विशाल, न देता कौन धरा पर भार ?

भानु-शशि किस आँगन में खेल, विश्व को देते ज्योति महान् ?
सितारों का झिल-मिल नव दीप, कहाँ पर भरता रश्मि वितान ?
इन्द्रधनु की सतरंगी चीर, पहन करती मादक मुस्कान;
कहाँ अज्ञात सुन्दरी सौम्य, कराती सरस सुधारस पान ?

उषा की ललित लालिमा बीच, लोल नीलांचल घूँघट खोल;
बता चंचल गति से सिन्दूर, भाल अनुराग रागिनी मोल;
लिए कलियों की उन्मद गंध, पवन के साथ मंद-गति डोल;
कहाँ तिरछी चितवन से चारु, चषक देती है मधु का घोल ?

कहाँ विद्युत का अतुल प्रकाश, घोर गर्जन का दुर्दम हास ?
प्रलय का बीज कहाँ उद्दाम, अमित नक्षत्रों का आवास ?
कौन है निखिल लोक में व्याप्त, विपुल ब्रह्माण्डों का अधिवास;
दूर दूरी का जटिल विधान, समय किसका है पूरा दास ?

शब्द की ध्वनि लेकर तत्काल, कौन पहुँचाता चारों ओर ?
किसे छूने में हम असमर्थ, न पाते किसका कोई छोर ?
कौन दे वारिद को विश्राम, शान्त करने को आतप घोर;
'बलाका राजित' दे जल-दान, नचाता जन-गण मानस मोर ?

न मिलता किसमें तनिक विकार, ब्रह्म का कौन अपरिमित रूप ?
न किसकी सीमा का निर्धार, कभी कर सकता कोई भूप ?
प्रकट करने पर भी अति यत्न, सदा किसका अविजेय स्वरूप ?
अगोचर चिर रहस्य का केन्द्र, बना है अब भी कौन अनूप ?

अकिंचन जो; न धान्य धन पूर्ण, न वसु की जिसमें कोई खान;
एक सम निज पर जिसे नितांत, दांत निर्लिप्त रहित अभिमान;
न आडंबर का जिसमें नाम, जिसे नृप रंक सदैव समान;
लोक-सेवा में रत निष्काम, वही होकर भी शून्य महान् ।

श्री ऋभुदेव शर्मा

पं० ऋभुदेव शर्मा का जन्म उत्तर-प्रदेश के बलिया ज़िले में १६ दिसम्बर, १६१७ को हुआ। शर्मा जी के माता-पिता धार्मिक-वृत्ति के थे इसलिए बचपन से ही इनका झुकाव धार्मिक विषयों की ओर अधिक था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा अपने गाँव में ही हुई। सातवीं कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात् शर्मा जी ने सन् १६३१ के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया और उसके फलस्वरूप बलिया जेल में बन्दी रहे।

राजनीति में प्रवेश करने के बाद भी शर्मा जी में विद्या-अर्जन की पिपासा बराबर बनी रही। कुछ दिनों के बाद आप घर छोड़ कर निकल पड़े और काशी, अयोध्या तथा पंजाब के कई स्थानों में रह कर व्याकरण, न्याय, निरुक्त मीमांसा और वेदों का अध्ययन किया।

शर्मा जी हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग की संस्कृत एवं हिन्दी में साहित्य-रत्न परीक्षा उत्तीर्ण हैं तथा वहीं से 'आयुर्वेद-रत्न' की भी उपाधि प्राप्त की है।

सन् १६४४ के बाद कई वर्षों तक शर्मा जी गुजरात और हैदराबाद के कई गुरुकुलों में वेद, व्याकरण और दर्शन के प्राध्यापक रहे और इधर कुछ दिनों से केशव स्मारक विद्यालय, हैदराबाद में हिन्दी एवं संस्कृत के अध्यापक हैं।

श्री शर्मा जी ने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा है तथा 'महर्षि दयानन्द गान', 'आर्य भजन संग्रह' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

अदृश्य-सत्ता

कहते हैं तुम अग-जग-व्यापक,
विश्व बनाया करते
कहते हैं तुम लेप-रहित,
संसार चलाया करते।

कर-पद-रहित महा-महिमा-मय,
रवि सुधांशु निर्माता,
विविध विघ्न दारिद्र्य विनाशक,
धन जन बल सुखदाता।

हे महेश, महनीय, महत्तम,
निर्विकार, निरुपद्रव,
अज, अनादि, अनुपम, अविनाशी,
अखिलेश्वर शंकर भव।

पुष्प-पुष्प में वास तुम्हारा,
विश्व तुम्हारी लीला,
दीन-अश्रु से भीगा रहता,
तव पद-पद्म सजीला।

प्रातः सन्ध्या बैठ देखते,
ध्यान लगा मुनि ज्ञानी,
लख रचना विचित्र, महिमा को,
मान गए अभिमानी।

कल-कल करती चली जा रही,
सरित, समुद्र-सदन को,
किसको ढूँढ़ रही है निशि-दिन,
घूम घूम वन-वन को।

पर्वत ऊँचा चला जा रहा,
किसका दर्शन पाने,
ग्रह भी घूम रहे हैं अब तक,
किसका पता लगाने।

तारे तुम्हें निहार रहे हैं,
दर्शन के अभिलाषी,
हे मेरे मन के अधिवासी,
बनते क्यों न सुभाषी।

डा० तेजनारायण लाल

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के उत्साही कार्यकर्ता डा० तेजनारायण लाल का जन्म २ फरवरी १६२० को हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई और वहीं काशी विद्यापीठ से आपने 'शास्त्री' और 'प्रभाकर' परीक्षा उत्तीर्ण की। डा० तेजनारायण ने सन् १६५० में हिन्दी विषय लेकर आगरा विश्वविद्यालय से एम. ए. की उपाधि प्राप्त की तथा गत वर्ष नागपुर विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। पी. एच. डी. की उपाधि के लिए आपने जो निबन्ध प्रस्तुत किया, उसका विषय "मैथिली लोकगीतों का अध्ययन" था।
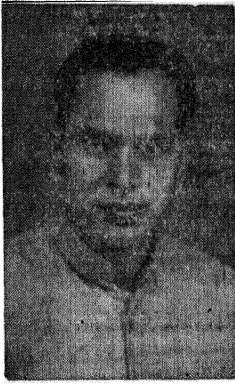
डा० तेजनारायण ने सन् १६४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और इसके लिए आपको जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। सन् १६४६ के बाद से आपने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में विभिन्न-पदों पर कार्य किया है और आजकल आप प्रचारक विद्यालय, हैदराबाद में प्राध्यापक हैं।

डा० तेजनारायण ने अब तक 'मधु-ज्वाल' और 'युग-नाद' नाम से दो काव्य-संग्रह प्रकाशित किए हैं और निकट भविष्य में कुछ और संग्रहों के प्रकाशित होने की आशा है।

---

*

विनिमय

मधु दे रहा तुम्हें मैं,
मुझको अंगार दे दो,
सुख दे रहा तुम्हें मैं, दुख तो उधार दे दो।

तुम आग अब न निगलो, पीओ न तुम हलाहल,
मत भस्म विश्व कर दो, जलने न दो अचञ्चल;
अमृत कलश उड़ेलो,
ज्वालोपहार दे दो,
मुझको अंगार दे दो।

शोषित, व्यथित जगत के कर-शूल नित्य सज्जित,
उर में बिंधा रहा मैं, लो फूल शुभ्र सस्मित;
तुम दूर ही रहो पर,
पद-चिह्न-क्षार दे दो,
मुझको अंगार दे दो।

जो ज्योति जल रही है, मेरे हृदय-गगन में,
ले लो इसे निरन्तर, भर लो निखिल-नयन में;
निरखो पलक उठा कर,
तुम अन्धकार दे दो,
मुझको अंगार दे दो।

उत्कण्ठा

तुझे देखने को हुए प्राण आतुर;

किया शूल का शुभ्र सिंगार मैंने,
दिया फूल का आज उपहार तूने;
सुरभि साँस मेरी चली तोड़ सीमा—
बढ़ी जा रही आज अंगार छूने।

न जाना पिघल तू कहीं देख मुझको,
न रोना अरी तू, विकल लख विधुर-उर;
तुझे देखने को हुए प्राण आतुर।

तुझे खोज कर चाँदनी मुस्कराती,
तुझे जान कोयल मुरलिका बजाती,
चरण-गति लिए आ रहा है समीरण,
मिलन की प्रतीक्षा नयन में समाती।

छिपेगी नहीं प्राण की मृदु-व्यथाएँ,
मुझे भूल कर क्या बनोगी न निष्ठुर,
तुझे देखने को हुए प्राण आतुर।

बँधे प्राण से आज क्यों प्राण मेरे,
मिले प्यार के विश्व-वरदान तेरे,
समा कर हृदय में छिपी तू चिरन्तन,
निखिल में मधुर-भाव तूने बिखेरे।

चला आ रहा व्योम, क्षिति पर उतर कर,
भ्रमर ने बजाए मधुर राग नूपुर,

तुझे देखने को हुए प्राण आतुर।

तिरी जा रही है तरी सिन्धु-जल में,
खिंची आ रही है विभा पुष्प-तल में;
मुझे शूल का पथ मिले तो इसे क्या?
मधुर-सुधि सजल बन गयी मन-पटल में।

उगलता चला आ रहा ज्वाल नवयुग,
जले प्राण कितने उगे प्रेम-अंकुर,
तुझे देखने को हुए प्राण आतुर।

श्री रामाधार शर्मा

श्री रामाधार शर्मा का जन्म १२ जुलाई सन् १९२० को हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। आपने हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसी से

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की तथा बाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'विशारद' एवं अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, वाराणसी से 'साहित्याचार्य' की उपाधि प्राप्त की।
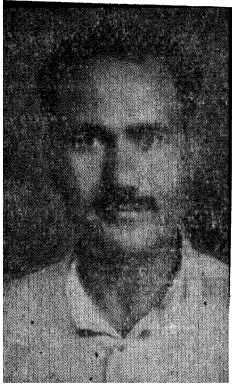
आर्थिक कठिनाइयों के कारण शर्मा जी किसी विश्वविद्यालय में ऊँची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके और आपको १८ वर्ष की अल्प-आयु में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई में नौकरी करनी पड़ी। वहीं आपने साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया और कुछ दिनों तक शालीमार पिक्चर्स, पूना में संवाद-निर्देशक के रूप में कार्य करते रहे। सन् १९४८ में शर्मा जी हैदराबाद आए और कई वर्षों तक यहाँ से प्रकाशित होने वाली 'अजन्ता' नाम की पत्रिका में व्यवस्थापक का कार्य करते रहे। आजकल आप गाँधी राष्ट्रीय विद्यालय, नान्देड़ में अध्यापक हैं।

शर्मा जी अच्छे वक्ता, लेखक तथा कवि हैं। इन्होंने 'जीवन के कुछ अध्याय', 'दार्शनिक', 'फूल और पंखड़ियाँ' तथा 'रहस्य' नाम से चार पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इनके अतिरिक्त आप, निकट भविष्य में 'कर्मयोगी' नाम का उपन्यास प्रकाशित कर रहे हैं।

शर्मा जी 'व्याकुल' उपनाम से कविता करते हैं।

अन्तर्वेदना

हृदय मेरा मरघट है आज।

वासना-चिता धधकती कहीं
सुलगता कहीं रूप शृंगार
मनोरथ, बने कफ़न के साथ
कहीं पर होते जलकर छार।
कल्पना की सरिता के घाट
कुटुम्बी बने चिता के साज;
हृदय मेरा मरघट है आज।

मोह-ममता गिद्धों की पंक्ति
नोचते हैं अँतड़ी की खाल;
विवशता और दाह लेकर
राख होते हैं सुन्दर बाल।
आशा-निराशा के मँझधार—
मिला है विविध-वेदना राज,
हृदय मेरा मरघट है आज।

जहाँ होते सपने साकार,
वहीं पर मूर्तिमान् संताप,
देह का खौल रहा है खून,
रंगों से निकल रही है भाप।
धैर्य का टूट गया है बाँध
बचालो दीनबन्धु, अब लाज,
हृदय मेरा मरघट है आज।

फूल से

ओ फूल, अधिक मत मुसकाना।

तुम बड़े दूर से आए हो,
इस सुन्दरता को पाए हो,
उस माली के मन भाए हो,
कुछ सौरभ भी संग लाए हो,

पर इस पर मत तुम इठलाना।
ओ फूल, अधिक मत मुसकाना॥

आएगा कुछ भी हाथ नहीं,
कोई भी देगा साथ नहीं,
माली पूछेगा बात नहीं,
होगा सौरभ यदि साथ नहीं,

उस समय न अवनत हो जाना।
ओ फूल, अधिक मत मुसकाना॥

आता हो ग्रीष्म-ताप जहाँ,
हो जाता हो संताप जहाँ,
हो कुछ कहना भी पाप जहाँ,
हो चुप रहना भी शाप जहाँ,

तुम भूल वहाँ मत रम जाना।
ओ फूल, अधिक मत मुसकाना॥

तुम काँटों को भी प्यार करो,
बस, अपना भी निस्तार करो,
निज सौरभ का विस्तार करो,
जो आ जाए सत्कार करो,

इस बार न पीछे रह जाना।
ओ फूल, अधिक मत मुसकाना।

यदि औरों से अनखाए तुम,
दुःखियों के काम न आए तुम,
अपने गुण पर इतराए तुम,
अवसर को व्यर्थ गँवाए तुम,

तो व्यर्थ रहा आना जाना।
ओ फूल, अधिक मत मुसकाना॥

श्री रामनगीना तिवारी

श्री रामनगीना तिवारी का जन्म १ अक्टूबर १६२१ को हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुई और आपने हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से हिन्दी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

श्री तिवारी शिक्षा समाप्त होने के बाद उत्तर-प्रदेश के कई विद्यालयों में अध्यापक रहे। साथ ही अध्यापकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयत्न-शील रहे। आप सन् १६५१-५२ में अध्यापक संघ, उत्तर-प्रदेश के उपाध्यक्ष रहे और सन् १६५२-५३ में क्षेत्रीय-अध्यापक-संघ के प्रधान मन्त्री रहे।

श्री तिवारी आजकल भारत सरकार के गृह-मन्त्रालय के; कार्यालयों में हिन्दी-शिक्षण-योजना के अन्तर्गत अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

श्री तिवारी अध्यापन एवं कविता के अतिरिक्त इतिहास और राजनीति के अध्ययन एवं समाज-सुधार के कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं।

श्री तिवारी ने 'बापू', 'शहीद उस्मान', 'बसेरा', 'मज़दूरिन' आदि नामों से बहुत से गीत और 'कामना' नाम से एक प्रबन्ध-काव्य प्रकाशित किया है। आपके 'प्रवास-वेला' और 'शिवाजी' नाम के दो प्रबन्ध-काव्य शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले हैं।

*

आभार

मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

आर्द्र-लोचन
श्लथ-चरण
करुणार्द्र
निःस्वन
छटपटाते सिन्धु का उच्छ्वास लेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

डूबते हिम-हास
गिरि के
आँसुओं के
करुण प्लावन
क्षुब्ध-तटिनी के प्रबल उन्माद लेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

सिन्धु के उच्छ्वास
नभ के फूल
तप्त-वसुधा के
मनोहर प्राण
इन्द्र-धनुषी जलद के उद्यान लेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

कोकिला की
काकली

ऋतुराज के
शृंगार-साधन
लुब्ध-मधुकर के नये संस्मरण लेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

शेष-शायी
विष्णु-सा
मैं क्षीर-सागर
का प्रवासी
गरल में उन्माद, तो मधु-कलश लेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

रीतियों की
नीतियों की
मेखला ने
जकड़ डाले,
हृदय में तूफान, तो मैं डाँड़ खेकर क्या करूँगा;
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

दीप जलता है
जलेगा
और कुछ क्षण
गहन-तम में,
नाश में निर्माण, तो मैं देव बन कर क्या करूँगा,
मैं किसी की वेदना का भार लेकर क्या करूँगा।

गीत

कौन तुम आराध्य मेरे ?

गिरि-शिखर पर रचा मंदिर
स्वर्ण-कलशों से विमंडित,
प्रात-सन्ध्या मधु-चषक भर
आरती लेते विकम्पित,

स्नान करते दूध-घी से
भोगते सुख-स्वर्ग नाना,
भूख की पीड़ा जलन दे
चाहते क्यों प्यार पाना ?

कौन तुम आराध्य मेरे ?

चमचमाती गाड़ियों में
शेष-शय्या पर विराजे,
अंक में रंजित-अधर,
उद्गीथ में वासना घोले,

राज-सत्ता के नशे में
झूमते, सौभाग्य फूले,
क्यों, किसी के अस्थि-पिंजर
तोपने की बात भूले ?

कौन तुम आराध्य मेरे ?

तार तन्त्री के चढ़ा कर
झन-झनाकर प्राण आरत,

छलछलाती प्यालियों में
जा रहे विष और घोले।

क्यों खुशी में चाहते हो
दुःख के सागर विलोना,
झाग उठती आग पानी
भूल कर आँसू न बोना।

कौन तुम आराध्य मेरे?

किन्तु तुम किस योजना के
राग-लय पर चल रहे हो,
क्रांति-भैरव की चिता पर
ग्रास बन कर पल रहे हो,

लपलपाती लपट उठ
लो, चाहती उन्माद धोना,
स्वर्ण-सिंहासन तपा कर
जाति के कल्मष विलोना,

कौन तुम आराध्य मेरे?

उठे वामन के चरण
बलि, नापने को वक्ष तेरे,
देख सन्ध्या के क्षितिज पर
घुमड़ते हैं डाल घेरे,

डोलती किंशुक पताका
हहरता बहता प्रभंजन,
शिशिर के दुख-दैन्य धोने
छा रहा मधुमास वन-वन,

कौन तुम आराध्य मेरे?

श्री नमीनदास नागेश

श्री नागेश का जन्म सन् १६२२ में बुरहानपुर, मध्य प्रदेश में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा अपने जन्म-स्थान में ही हुई और उसके बाद आपने हिन्दी विश्व-

विद्यालय, प्रयाग से साहित्य रत्न एवं हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, बिहार से साहित्यालंकार की उपाधि प्राप्त की।

बचपन से ही श्री नागेश का झुकाव साहित्य के साथ, राजनीति की ओर भी रहा। आप नगर कांग्रेस कमेटी के कई वर्षों तक सक्रिय कार्यकर्ता रहे और सन् १६४२ के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के समय बुरहानपुर के क्षेत्र में आन्दोलन को संगठित करने का महत्व-पूर्ण कार्य किया।

क़रीब ७ वर्ष पूर्व श्री नागेश, हैदराबाद आए और हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद में विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे। आप कुछ दिनों तक हैदराबाद से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका अजन्ता के व्यवस्थापक रहे और आज-कल धर्मवन्त हिन्दी विद्यालय, हैदराबाद में अध्यापक हैं।

श्री नागेश को संगीत और सार्वजनिक कार्यों में विशेष रुचि है। आज-कल आप आनन्द-ललित-कला-संघ, हैदराबाद के साहित्य मन्त्री हैं।

भाषा एवं भावों की सरलता और कविता-पठन के विशेष ढंग के कारण श्री नागेश को आन्ध्र प्रदेश में एक कवि के रूप में पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त हुई है।

सँपेरे से

सँपेरे,
बड़े चतुर हो तुम,
साँप पकड़ लेते हो न,
दाँत तोड़ देते हो उसके,
जहर नोंच लेते हो न,
गर्व चूर कर देते हो,
पुँगी बजा-बजा के उसे–
बस में कर लेते हो न ?
तो एहसान बहुत है तुम्हारा—
इन्सान पर,
इन्सानियत पर,
उपकार भारी है।

पर,
पर, सँपेरे !
साँप, साँप ही तो है,
जो डस लेता तो....
तो नहीं नहीं,
चतुर नहीं,
नादान हो तुम,
साँप देखे नहीं तुमने,
साँप पकड़े नहीं।

सांप ऐसे भी होते हैं,
जो डस लेते हैं,
पर पता नहीं चलता,
दर्द बढ़ जाता है,
जहर चढ़ जाता है
और आदमी
मौत से पहले ही
मर जाता है।

फर्क इतना ही है,
अन्तर इतना ही है,
उनमें, इनमें,
कि उन्हें
दुम होती है,
इन्हें दुम नहीं होती,
उनकी किस्म होती है–
इनकी किस्म नहीं होती,
उनकी पहचान होती है,
इनकी नहीं होती।

तुझ से तेरी बात कहूँ क्या ?

छलिया तेरी बात, बात है, तुझसे तेरी बात कहूँ क्या ?

देकर तूने चक्कर मुझको,
चक्कर में चकराया ऐसा;
भरी बजरिया झलक दिखा, फिर
कुंज-कुंज भटकाया ऐसा;
जीवन-घट को लेकर भटकी;
थकी जहाँ भी मटकी पटकी;
पनघट-पनघट मरघट-मरघट—
भटक फिरी पर भरी न मटकी।

अब तो रीती मटकी भर दे, या यह घट ही गारत कर दे;
पनघट से मरघट तक प्यासी, भटकाने की घात कहूँ क्या,
छलिया तेरी बात, बात है; तुझ से तेरी बात कहूँ क्या ?

नगरी तेरी बहुत दूर औ',
डगर मेरी अनजानी है;
मृग-तृष्णा ले भटक रही मैं,
लोग कहें दीवानी है।
अम्बर ताका, पनघट झाँका,
मरघट-मरघट अलख जगाई;
शूल-शूल ने दामन खींचा,
फूल-फूल ने हँसी उड़ाई;

पग ने पाले, पग पर छाले, मुख ने डाले मुख पर ताले,
सरगम दे तू स्वर ले बैठा, तेरा यह उत्पात कहूँ क्या,
छलिया तेरी बात, बात है, तुझ से तेरी बात कहूँ क्या ?

इस करवट दर्द दबाती हूँ;
इस करवट दर्द उभरता है,
पीड़ा को यदि सहलाती तो,
मोती का कोष बिखरता है।

घट ले बैठी, मरघट द्वारे,
स्वप्न रहे सब मेरे क्वाँरे
विश्वासों की घटी उमरिया,
आशाओं के सम्बल हारे;

स्वर पर तेरे दर-दर नाची, इस घर नाची, उस घर नाची,
अंग-अंग में पीड़ा नाची, जोड़-जोड़ आघात, कहूँ क्या;
छलिया तेरी बात, बात है; तुझ से तेरी बात कहूँ क्या?

माना, घट की काया माटी,
जीवन माटी, माया माटी;
माटी का क्या मोल मिलेगा,
माटी का घट आखिर माटी।

पर, तप का तो तोल हुआ है,
तप, तप कर अनमोल हुआ है;
माटी का कुछ मोल नहीं, पर
मूरत का तो मोल हुआ है;

अब तो मूरत में रंग भर दे, या यह मूरत माटी कर दे,
सस्ती महँगी कीमत पाने, काटी कितनी रात कहूँ क्या;
छलिया तेरी बात, बात है, तुझ से तेरी बात कहूँ क्या?

खोने में ही पाना तुझको,
पा जाने के हित खोना है;
तेरी महफिल जाग-जाग कर,
तेरी ही चौखट सोना है।

अब तू चाहे रंग-रस भर दे,
या यह घट ही विष-घट कर दे,
मर्ज़ी तेरी, घट भी तेरा
तू चाहे तो समरस कर दे

जर्जर चादर खींच-खींच मैं, अब तो आँखे मीच रही हूँ;
हार-हार कर जीत रही, फिर इसको अपनी मात कहूँ क्या.
छलिया तेरी बात, बात है, तुझ से तेरी बात कहूँ क्या ?

श्री अध्यात्म त्रिपाठी

श्री अध्यात्म त्रिपाठी का जन्म सन् १९२४ में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा बलिया, उत्तर प्रदेश में हुई और बाद में आपने वाराणसी में हिन्दी की ऊँची शिक्षा प्राप्त की।

श्री त्रिपाठी की रुचि बचपन से ही साहित्य के साथ समाज-सेवा और राजनीति में रही। आपने सन् १९५३ में "एशियन सोशलिस्ट कान्फ्रेंस, रंगून" में भारत का प्रतिनिधित्व किया और इस समय भी समाजवादी पार्टी के एक सक्रिय कार्यकर्ता हैं। श्री त्रिपाठी, समाजवादी प्रकाशन ट्रस्ट, हैदराबाद के मन्त्री हैं और हैदराबाद से निकलने वाले समाजवादी पार्टी के मुख-पत्र 'चौखम्भा' (हिन्दी, साप्ताहिक) का प्रकाशन कर रहे हैं।

श्री त्रिपाठी ने बहुत से निबन्ध एवं कविताएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। आपका 'अराकान के अंचल में' नाम का खण्ड-काव्य निकट भविष्य में प्रकाशित होने वाला है।

मनुष्य देखता रहा

मनुष्यता सिसक रही, मनुष्य देखता रहा।

जिसे उषा दुलार से कभी नहीं उठा सकी,
जिसे नसीम प्यार से कभी न गुदगुदा सकी,
जिसे प्रभात की अरुण-किरण नहीं रिझा सकी,
जिसे कली की चटकनें कभी नहीं लुभा सकीं,
उन्हीं के अश्रु-बिन्दु से मनुष्य खेलता रहा।
मनुष्यता सिसक रही, मनुष्य देखता रहा॥

जिसे न शीत को निशा दिशा-विमुक्त कर सकी,
न मध्य-सूर्य की तपिश शरीर तप्त कर सकी,
न बिजलियाँ हिला सकीं, न आँधियाँ झुका सकीं,
सदा कदम बढ़े रहे कभी डगर न थक सकी,
वही मनुष्य अश्व-सा जहान खींचता रहा।
मनुष्यता सिसक रही, मनुष्य देखता रहा॥

कहीं कली विहँस रही, कहीं कली सिसक रही,
हार में गुंथी कहीं, कहीं कदम तले पड़ी,
अलि मिटा जहाँ, वहीं कली को ज़िन्दगी मिली,
कहीं दुलार पा रही कहीं दुलार खो रही,
उसी कली में विश्व स्वत्व-नियति हेरता रहा।
मनुष्यता सिसक रही, मनुष्य देखता रहा॥

आज व्यष्टि में कहो समष्टि क्यों समा रही,
आज क्यों मनुष्य को, मनुष्यता भुला रही,

सृष्टि एक है मगर अनेक दृष्टि आज क्यों,
एक तान में अनेक गान क्यों सुना रही,
जहाँ लगाव चाहिए, दुराव देखता रहा।
मनुष्यता सिसक रही, मनुष्य देखता रहा॥

सुप्त मानवी उठी, निशा ढली, उषा हँसी,
इस नवीन प्रात में सुरभि मिला, कली खिली,
नवीन-विश्व, कल्पना समानता-सनेह की,
नयी-दिशा, नयी-प्रभा, नवीन-सृष्टि की कड़ी,
जहाँ मनुष्य स्नेह का शृंगार देखता रहा।
मनुष्यता विहंस रही, मनुष्य देखता रहा॥

निर्झर

ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

गगन चूम कर आता तू,
धरती से नेह लगाता तू,
थके बटोही को थपकी दे,
अविरल गीत सुनाता तू।
अमर-स्वर भर
ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

निशि-दिन जो आँख बरसती है,
अन्तर की ज्वाल धधकती है,

गिन गिन कर जिनकी रात कटी—
मंजिल की राह सिसकती है,
उनके आँसू पीकर,
ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

सुधियों के बादल छाते हैं,
तब आँसू भर भर आते हैं,
संसृति की पीड़ा उर में रख,
वे निखर निखर कर आते हैं,
दो मोती छलका कर
ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

कलियाँ आस लगायीं थीं,
शबनम ढेर मँगायीं थीं,
ऊषा ने थाल सजाया जब,
हँस हँस कर तुझे रिझायीं थीं,
उनकी पंखड़ियाँ छूकर
ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

भँवरों की कुटिल निगाहें थीं,
सपनों में उनकी चाहें थीं,
धड़कन-सीमा से बहुत दूर,
कुछ निठुर मधुर सी आहें थीं,
उनसे आँख बचा कर
ओ निर्झर,
तू झर झर झर।

श्री बी. वी. सुब्बाराव

श्री बी. वी. सुब्बाराव का जन्म आन्ध्र-प्रदेश के गुण्टूर ज़िले में सन् १६२६ में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गुण्टूर में समाप्त करने के बाद श्री सुब्बाराव ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य रत्न और नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

आप इस समय हिन्दू कालेज, गुंटूर में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं।

श्री सुब्बाराव, एक अच्छे कवि होने के साथ एक अच्छे कहानी लेखक और उपन्यासकार भी हैं। आपने अब तक ८ पुस्तकें—प्रणय, मृणालिनी, भारत-श्री (काव्य), उफान (उपन्यास), कथा-गुच्छ, सिद्धहस्त, भारत के पुजारी, कथा-भारती (कहानी) प्रकाशित की हैं। निकट भविष्य में आप तीन और पुस्तकें—रशमी कुर्ता, आन्ध्र-श्री (काव्य) और बैरागी (कहानी) नाम से प्रकाशित कर रहे हैं।

श्री सुब्बाराव की हिन्दी के प्रचार-कार्य में विशेष रुचि है। हिन्दी का प्रचार कार्य करने वाली संस्थाओं में विभिन्न-पदों पर रह कर आपने हिन्दी के प्रचार कार्य में सक्रिय सहयोग दिया है।

जावा कुसुम

अरी जवा कुसुम,
प्रियतम-अंकोरी-कुंकुम
छोड़-छोड़, मुँह मोड़-मोड़,
पत्तों की ले आड़,
अखियाँ पसार, ठुमक-ठुमक
भ्रमर की ओर झुनक-झुनक,
है झनकार सुनती रही।

फैला रक्त-गाल,
मानो हो अमृत का थाल,
हिला-हिला किसलय कर,
झुका-झुका क्षीण कमर,
मुख मंदहास, थिरक-थिरक
भृकुटि विलास कर,
भ्रमर को बुला रही।

तज कर ज्ञान-तेज,
लुढ़का अपना धर्म-सेज,
नील-मणि-मुकुट-विभ्रम से
क्षणिक-भोग-आह्लाद-भाव से—
स्निग्ध-चन्द्रिका मूल्य योग्य,
जो है तेरा कर्म-भाग,
शंका-हीन क्यों छोड़ रही?

री छोड़ कर छोह,
सुन ले मेरी करुण आह,
कितनी तुम्हारी सखियाँ,
मकरंद पिला अनुराग का
चंचल कलुषित भ्रमरों को,
छोड़ रही ठंढी साँस,
तू है काम के तीर विध रही,
अरी जावा कुसुम।

गीत

हे सखि,

प्रमुद शीतकर-कर-चाल से,
लिख दो मेरे मन-मानस में,
उज्वल कुमुद पंक्तियाँ नूतन,
परिरंभ्य हो मराल-श्रेणि में।

हे सखि,

मौक्तिक-माला से शृंगार कर,
नयन पसार, गभीर वदन से
पहचानो मेरा हृदय-नाद,
रुनक-झुनक मंजीर-नाद से।

हे सखि,

विश्व-पुरुष का विकल-नाद
अध-मुंदे काजल-कग़ारों से

मदभरी-भृकुटी-वैदग्ध्य से
झांको, विस्मय-विद्युत-रद से ।

हे सखि,

जग फैलाओ आँचल कोमल,
सुलाऊँ वेदना सुता को,
कर सहलाकर अमर नींद में,
जगा करुणा-स्वर लहरियों को ।

हे सखि,

वेदना विश्व की,
मेरी सखि ।

श्री कालीचरण गुप्त

श्री कालीचरण गुप्त का जन्म सन १९२७ में महेन्द्रगढ़, पंजाब में हुआ।
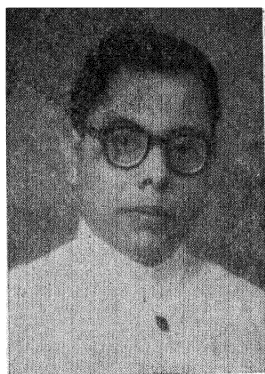
श्री गुप्त को स्कूल कालेजों में अध्ययन का अवसर नहीं मिला किन्तु आपने स्वाध्याय से हिन्दी की अच्छी योग्यता प्राप्त की।

श्री कालीचरण जी गुप्त के पिता श्री इन्द्रलाल जी गुप्त व्यापार के सम्बन्ध से हैदराबाद आए और कई दशकों से श्री गुप्त हैदराबाद में रह रहे हैं।

साहित्य के अतिरिक्त श्री गुप्त को नाटक, संगीत और समाज-सुधार के कार्यों में विशेष रुचि है। आप कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता हैं और अपना अधिक समय सर्वोदय विचार-धारा को फैलाने और रचनात्मक कार्यों में लगा रहे हैं।

श्री गुप्त 'राही' उपनाम से कविता करते हैं। इन्होंने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की हैं। आशा है, निकट भविष्य में इनकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित होगा।

अन्तर्वेदना

भर आता दिल पीड़ा से उत्पीड़न पाकर,
दो बिन्दु दृगों में सहसा चमक उमड़ आते,
अन्तर मेरा जब क्रन्दन करने लगता है,
कुछ शब्द, गीत की संज्ञा बन हैं बह जाते।

कल्पना-चित्र के आगे चित्र दूसरा ही,
विपरीत दशा का स्वयं सामने पाता हूँ,
अपने सारे अरमान और उद्गार लिये,
यूँ मौन सशंकित कम्पित हो डर जाता हूँ।

जब मैंने युग के चरण ग़लत गिरते देखे,
अनुराग मेरा ठिठका-सा भ्रमित हताश बना,
अन्तस्थल मेरा व्याकुल, विकल भटकता हूँ,
विश्वास खो गया, वातावरण निराश बना।

समझा था रूखे चेहरे फिर मुस्काएँगे,
सोचा था खुशी-चैन के दिन अब आएँगे,
जो सहीं यातनाएँ उनसे छुटकारा पा,
अपने घर को हम स्वर्ग समान बनाएँगे।

उत्तम साँचे में ढालेंगे अपनी ईटें,
सुन्दर-सा महल खड़ा होगा इस खण्डहर पर,
पर समय बीतता देखा जैसे जैसे ही,
छिन्न-भिन्न था नक्शा, चित्त उदास बना।

लघु-स्वप्न विचरते भला उड़ान कहाँ होगी,
जागे गर अभी नहीं तो शाम यहाँ होगी,
गत-पुण्यों का यह लाभ कहाँ तक मिल सकता,
संचय शुभ नहीं हुआ तो शान कहाँ होगी ?

आराध्य-देव मंदिर में नया बिठाना है,
काफिला नया, नारा भी नया लगाना है,
जाति, फिरके, सूबों के चक्कर से उठ कर,
अपनी तस्वीरों के बदले, कुछ आगे बढ़,
तस्वीर सही ढंग की फिर नई बनाना है।

अंगों की नहीं, पूर्ण-रूप की निष्ठा ही,
झोली अपनी केवल वह ही भर सकती है,
अँगों की मज़बूती खुद नई चेतना ले,
सारे शरीर में नव-जीवन भर सकती है।

रंग-बिरंगे पुष्प खिले हों मुस्काते,
दे रहे योग उपवन की शोभा कहलाते,
छिड़ जाए सरगम, माँ के सिर हो नया ताज,
अनुप्राणित जिससे हो जाए सारा समाज।

बढ़े जवाहरलाल नई ताक़त लेकर,
नया समाज बने, नारा है गाँधी का,
चल रहे विनोबा सतत लगा बाज़ी सारी,
यह स्वप्न हमारा नहीं, स्वप्न है गाँधी का।

भर आता दिल पीड़ा से उत्पीड़न पाकर.
दो बिन्दु दृगों में सहसा चमक उमड़ आते,
जब मैंने युग के चरण ग़लत गिरते देखे,
अनुराग मेरा ठिठका-सा भ्रमित हताश बना।

परिधि से दूर रहो

नये एशिया की परिधि से दूर रहो,

ऊषा की लाली छिटक कह रही सबको,
सदियों के बन्धन टूट चुके हैं अब तो,
नया जागरण कहता है ललकार सुनो,
नये एशिया की परिधि से दूर रहो।

जब-जब तम का अँधियारा रंग जमाता,
जब-जब दानव अपना उत्पात मचाता,
जब-जब मानव, मानव को, दास बनाता,
उर में उसके तब-तब प्रकाश छा जाता,
उसके अन्तर भीषण ज्वाला जल जाती,
जिसकी लपटें कितने ही ताज जलातीं,
अपने तख़्तों, ताजों की ख़ैर मनाने,
नये एशिया की परिधि से दूर रहो।

ऊषा की लाली छिटक कह रही सबको,
नये एशिया की परिधि से दूर रहो।

संगीनों से डरने का नहीं ज़माना,
एशिया आज गाता है नया तराना,
इसने झटके दे बन्धन तोड़े सारे,
समझो इस अंगड़ाई के मस्त इशारे,
इसके शीतल उर में ज्वाला भड़की है,
सँभलो, समझो, क्यों यह बिजली कड़की है?
सुख छीनो न इसका, जीने दो शोषक,
नये एशिया की परिधि से दूर रहो।

ऊषा की लाली छिटक कह रही सबको,
नये एशिया की परिधि से दूर रहो।

श्री बलबीर सहाय

श्री बलबीर सहाय का जन्म ६ जुलाई, १९२७ को उत्तर-प्रदेश में हुआ। आपने लखनऊ में शिक्षा प्राप्त की और हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद रेलवे में नौकरी कर ली। इधर क़रीब ५ वर्षों से आप हैदराबाद में हैं।

श्री बलबीर सहाय ने अब तक बहुत से गीत, कहानियाँ, रेखा-चित्र, एकांकी और रेडियो-रूपक, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए हैं। आपका एक उपन्यास "गगन की गुफाएँ" नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आपकी तीन पुस्तकें—'मुक्त-केशिनी' (गीत-संग्रह), 'सीता (एकांकी-संग्रह), 'ज़िन्दगी और मौत' (उपन्यास) निकट भविष्य में प्रकाशित होंगी।

श्री बलबीर सहाय को चित्र-कला और संगीत में रुचि है।

गीत

(१)

न जाने क्या हुआ नभ में,
कि छाने लग गए बादल।

भुजाओं पर किसी ने पेड़ की, बरसात काटी थी,
तुम्हारी याद में घुल-घुल मिलन की रात काटी थी,
कि जब-जब ऊब कर मैंने तुम्हारा चाँद देखा था,
कि तब ही नाज़ से डाला किसी ने लाज का आँचल।

न जाने क्या हुआ नभ में,
कि छाने लग गए बादल।

बड़ी बेचैन मछली-सी वधू की मद-भरी आँखें,
बुलाती थीं कनखियों से सुनीली भील-सी आँखें,
लगी एक पांति मेघों की क्षितिज से मिल रही ऐसे,
कि जैसे हो अँभा-सा आँख में भी सुरमयी काजल।

न जाने क्या हुआ नभ में,
कि छाने लग गए बादल।

(२)

दूर हो तुम पास भी हो।

चांद-तारों से सजा नभ,
वसुन्धरा से बोलता कब,
किन्तु रजनी का अन्धेरा,
मौन पृथ्वी पर उतर कर,
कान में कहता क्षितिज पर,
तृप्ति हो तुम प्यास भी हो।
दूर हो तुम पास भी हो।

टीस को सागर दबाए,
कहता तटों से कब कहानी,
किन्तु लहरें प्यार में भर,
भागती हैं बिलबिलाती,
और कहतीं उन तटों से—
तुम रुदन हो हास भी हो।
दूर हो तुम पास भी हो।

बन्द कर पंकज भँवर को,
रात को ही कब बताता,
किन्तु ऊषा को निरख कर,
ज्यों ही पागल मुस्कराता,
त्यों ही भँवरा गुनगुनाता—
सृष्टि हो तुम नाश भी हो।
दूर हो तुम पास भी हो।

(३)

किसी की बेकली-धड़कन मुझे सोने नहीं देती,
गगन की भीत के पीछे न जाने कौन है क़ैदी,
कि जिसने ज़िन्दगी अपनी विवश हो प्यार में देदी,
ये लाखों कील-से तारे जहाँ है चाँद की खिड़की,
मगर मजबूरियाँ खिड़की तलक आने नहीं देतीं।

सिसकती हर लहर तट पर किनारे सो नहीं पाते,
क्षितिज के तौक़ से मुक्ति धरा नभ पा नहीं पाते,
अन्धेरा थपथपाता है कि मुझको नींद आ जाए—
मगर तड़पन किसी की नींद को सपने नहीं देती।

घिरे आते, लिए आँसू किसी के रुपहले बादल,
तड़पता हूँ न जाने क्यों किसी के तीर से घायल,
खड़ा केवल रहा तट पर सुनाने प्यार की पाती,
लहर आती, चली जाती व्यथा कहने नहीं देती।
किसी की बेकली-धड़कन मुझे सोने नहीं देती॥

श्री दुर्गानन्द

श्री दुर्गानन्द का जन्म आन्ध्र-प्रदेश के तेनाली ज़िले में सन् १९२७ में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा तेनाली में हुई। उसके बाद क़रीब दो वर्षों तक लाहौर में रह कर आपने हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन किया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य रत्न' की उपाधि प्राप्त की।
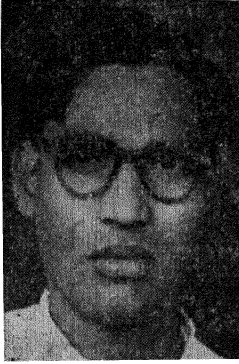
शिक्षा समाप्त करने के बाद श्री दुर्गानन्द, क़रीब पांच वर्षों तक हिन्दी-प्रचारक-शिक्षण विद्यालय, तेनाली में अध्यापक रहे और आज-कल हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले तेलुगु मासिक 'स्रवन्ती' के सम्पादन में योग दे रहे हैं।

श्री दुर्गानन्द ने 'अन्तर्गोलालु' नाम से गीतों का एक संग्रह और 'मधूलिका' नाम से एक खण्ड-काव्य प्रकाशित किया है। आपने रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीताञ्जलि का हिन्दी अनुवाद किया है तथा तेलुगु के बहुत से लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया है।

टीचर

जिला बोर्ड रूपी यन्त्र में सिर घुसेड़ कर
तड़पने वाले टीचर, यह क्या !
इस सर्विस रजिस्टर से छिः छिः
सिला लिया क्या अपना भविष्य ?

हाय, तुम्हारी हर छोटी आशा पर
लाल स्याही के धब्बे !
तुम्हारी साँस पर ये किसके हैं हस्ताक्षर, स्टांप-चिन्ह !
किसकी दस्तखत में तुम श्वास लेते हो
दस्तखत न होगी तो तुम्हारा श्वास रुके।

हे टीचर,
राजनीति और व्यापार जूझ रहे हैं—
यह वह संसार है।
तुम तटस्थ देश हो, दब जाओ, दम घुट कर मरो—
दो साँड़ों के बीच बछड़े की तरह।

बरसों से विचाराधीन, फाइलों में पड़े
उस लम्बे आवेदन-पत्र की तरह
तुम दबते जा रहे हो टीचर।
लो घंटी बजी, कान न देना अपने घर की
चिल्लाहट पर।

हे किंडर-गार्डर वनमाली,
भूमि, सूर्य के इर्दगिर्द नहीं,

तुम्हारी परेशानियाँ तुम्हारे दिमाग के चारों ओर
गोल-मोल घूम रही हैं।

क्यों टीचर, तुम्हारा जीवन हमेशा
'माइनस' में ही रहेगा ?
तुम्हारी समस्याओं का हल करने वाला
पैथोगरस नहीं पैदा होगा ?

भग्न-खण्डहर

झाँक रहा है भाग्य,
दबा दबा कर स्विच
टिम-टिमा रही है ज़िन्दगी,
कोने वाले कमरे में—
सुदूर उस तहखाने में।
मंजिल पर मंजिल
बने उस महल में,
दिमाग़ के ख़ानों में,
नहीं ख़ानदान फिरोजशाह का।
बड़े फाटक वाली सड़क पर
सोए मुसाफिर शाम के वक्त
अब नहीं, किस भोर के सितारों में
मिले, गए, हुए ग़ायब।
ईमानदारी का बड़ा भारी
मैदान, नहीं किवाड़ों पर ताले,

हे चोर, जीवन-रत्न लूटने वाले
आ जा।
खस की ये टट्टियाँ
आसमान तक लटक रहीं
जेठ की लू रोकने के मिस,
पर, परवाह कब की अन्दर—
भक-भक करती ज्वाला।
पुराने ढर्रे की बुनियाद पर
बे-सिर-पैर के पत्थर रख
बनाया गया यह खण्डहर,
बेकार गया कितना माल।
नहीं घुसतीं, रवि-रश्मियाँ,
साँय-साँय की अनाथ-हवा
खुली बन्द इन खिड़कियों में,
नहीं उगेगी, नहीं उगेगी
विश्व-जीवन-स्तर
विकसाने वाली मानवता।

श्री चन्द्रदेव शर्मा

श्री चन्द्रदेव शर्मा का जन्म २८ मई, १६२७ को हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद के विभिन्न स्कूलों में हुई। उसके बाद आपने निजाम कालेज से बी. ए. एवं उस्मानिया विश्व विद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।
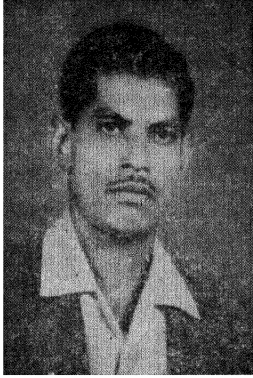
श्री शर्मा, शिक्षा समाप्त करने के बाद आन्ध्र-प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग के कई विद्यालयों में हिन्दी-अध्यापन का कार्य करते रहे। बीच में एक वर्ष का अवकाश लेकर आपने बी. एड. परीक्षा पास की। आज कल आप टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, वरंगल में प्राध्यापक हैं।

हिन्दी के अतिरिक्त श्री शर्मा को संस्कृत की अच्छी जानकारी है। आपने कलकत्ता विश्व-विद्यालय से संस्कृत में प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की है एवं स्वाध्याय के द्वारा अपने संस्कृत ज्ञान को बढ़ाया है।

श्री शर्मा को कहानी, कविता एवं आलोचनात्मक निबन्धों के लिखने में रुचि है। आशा है, आप की इन विषयों पर कुछ पुस्तकें निकट-भविष्य में प्रकाशित होंगी।

कुछ लिखा करो

इसलिए कि लिख-लिख लाखों पाए लाखों ने,
इसलिए कि लिख-लिख आँखें पाईं आँखों ने,
इसलिए कि लिख-लिख भू-अम्बर के ओर-छोर—
नापे प्रणयी के प्रणय-पत्र की पाँखों ने,
मन के सागर में, प्रणय-लहर में डूब-डूब,
मेरे साथी गुमनाम न हो तो लिखा करो।

क्या कहा, 'लिखूँ क्यों' लिखा और विष निकल गया,
क्या कहा, 'लिखूँ क्यों' लिखा और जी पिघल गया,
क्या कहा, आँख की कोरों की झकझोरों से—
छू गए छोर तो हृदय किसी का मचल गया,
कहने सुनने का किसी संग-दिल साथी पर—
मेरे साथी, परिणाम न हो तो लिखा करो।

इसलिए कि लिख दीं आँखें तो बन गए तीर,
इसलिए कि लिखा चाँद, उगा मन-पटल चीर,
इसलिए कि मीठी-तरल-सरल-मुसकान लिखी—
धँस गई सुमन से मन में, पैनी प्रणय पीर,
इस विष-मय युग में किसी क्षेत्र में मिला कभी—
मेरे साथी संग्राम न हो तो लिखा करो।

लिख दिया 'ब्रह्म' तो अलख छा गया 'मैं' 'तू' पर,
लिख दिया 'गगन' तो शून्य-नील छाया भू पर,
लिख दिया 'स्वर्ग' तो रचे सुनहले सपनों ने—

ये चहल-पहल से भरे महल, जलती भू पर,
देखा लिखने का असर, तुम्हारी बकझक का,
मेरे साथी, धरती पर यदि आराम न हो तो लिखा करो।

कवि ने लिख डाले गीत, स्वरों में भूल गए,
रवि ने लिख डाली किरण, फूल सब फूल गए,
छवि ने लिख डाले चित्र, देख कर फूलों के
फूलों से दिल में हाय शूल-से हूल गए,
आवारों का इस युग में पारावार नहीं,
ओ साथी, यदि धन-धाम न हो तो लिखा करो।

क्या लिखा, न इसका है जवाब, बस मत पूछो,
हो भी जवाब तो, सभी नहीं सहमत पूछो,
इस उथल-पुथल की दुनियाँ को कुछ शब्दों में —
तुम बांध रहे हो ओ लेखक, यों मत पूछो,
इस पूछ-ताछ की भूल-भुलैया से बच कर —
ओ मेरे साथी, जीवन में विश्राम न हो तो लिखा करो।

क्या राजनीति के पथ में भी आराम नहीं,
क्या प्रथा-पुत्र के रथ में भी घन-श्याम नहीं,
साहित्य-सुधा के सागर में तिरने वालो
क्या भाव-लहरियों के अथ में विश्राम नहीं
ऊषा की मधु मुसकान भरी मधु-वेला में,
मेरे साथी, यदि शाम न हो तो लिखा करो।

क्या लिखूँ प्रात, रोती रातों की कथा लिखूँ,
क्या लिखूँ रात, दिन के प्रकाश की व्यथा लिखूँ,
क्या लिखूँ, जगत की जटिल उलझनों की झनझन
उस में मोहित जन-मन की माया का विकास,

लिखते-लिखते, लिखने की ललित-कलाओं का,
मेरे साथी अविराम न हो तो लिखा करो।

जो लिखा, न सच की तुला-तोल में चढ़ पाया,
जो लिखा न मन के अमित्न मोल से बढ़ पाया,
जो लिखा, लेखकों ने अब तक उस को युग ने
उनकी आँखों से नहीं, बोल में पढ़ पाया,
युग की आँखों को डाल स्वयं की आँखों में,
मेरे साथी, मति बाम न हो तो लिखा करो।

कृति एक, किन्तु अनुकृतियों का लेखा अनेक,
मति एक, किन्तु अनुमतियों का शत-शत विवेक,
रति एक, विविध अनुरतियों से डगमग जग की—
पग-पग, लय-लय, वहु विधि पर गूँजी टेक एक,
फिर लिखे कौन, क्यों लिखे, किसे, कैसे साथी,
पाने को चेतन का प्रकाश कुछ लिखा करो।

श्री रामनिवास शर्मा

श्री रामनिवास शर्मा का जन्म १० अप्रैल, १६२८ को हैदराबाद में हुआ। बचपन से ही आपकी रुचि आयुर्वेद की ओर रही। प्रारंभिक-शिक्षा समाप्त करने के बाद आयुर्वेदिक कालेज, हैदराबाद से आपने 'आयुर्वेद विशारद' की परीक्षा पास की। बाद में आपने उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद से बी. ए. और पंजाब विश्वविद्यालय से 'प्रभाकर' की उपाधि प्राप्त की।
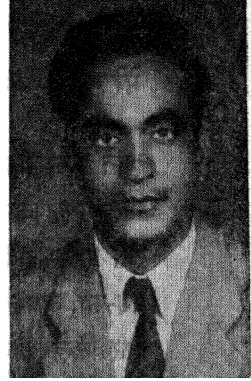
श्री शर्मा कुछ दिनों तक आल इण्डिया रेडियो, हैदराबाद के हिन्दी विभाग में कार्य करते रहे और आजकल राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, हैदराबाद में प्राध्यापक हैं।

श्री शर्मा को चिकित्सा एवं कविता के अतिरिक्त रेडियो-रूपक लिखने और अभिनय में विशेष रुचि है।

श्री शर्मा ने मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्रों का एक संकलन हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग से तथा 'मेट्रियामेडिका आफ आयुर्वेद' नाम की पुस्तक, हैदराबाद से प्रकाशित की है।

गीत

(१)

रात ढलती रही
मीत सोते रहे,
चाँद से पूछ लो
नयन रोते रहे।

आज मेरी व्यथा
बन गई है कथा,
दीप भी बुझ गया
बाट जोते रहे,
चाँद से पूछ लो
नयन रोते रहे।

बढ़ चले थे क़दम
मंज़िलें हट गईं,
चित्र मिटने लगा,
धीर खोते रहे,
चाँद से पूछ लो
नयन रोते रहे।

(२)

मुझे है अन्धकार से प्यार।

मुझे नहीं सुख की अभिलाषा,
नहीं मिलन-पल की जिज्ञासा,
दूर-दूर रहकर ही दे दो—
पीड़ा का उपहार
मुझे है अन्धकार से प्यार।

जीवन एक अधूरा सपना,
वह भी आज नहीं है अपना,
विष-अमृत जो चाहे दे दो,
कर लूँगा स्वीकार,
मुझे है अन्धकार से प्यार।

(३)

मदिर हैं नयन तुम्हारे।

क्या ये विष हैं मुक्ति-प्रदाता,
या अमृत हैं जीवन-दाता,
चंचल हैं या स्वयं चेतना,
या नभ के दो तारे।
मदिर हैं नयन तुम्हारे।

इन नयनों से कभी जवानी—
बन जाती है एक कहानी,
और यही डगमग पाँवों के
बनते कभी सहारे।
मदिर हैं नयन तुम्हारे।

श्री विश्वनाथ मिश्र

श्री विश्वनाथ मिश्र का जन्म १ जून, १९२८ को हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई। उसके बाद आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम. ए. तथा एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त की।

श्री मिश्र, शिक्षा समाप्त करने के बाद गाँधी राष्ट्रीय विद्यालय, नान्देड़ तथा अन्य कई विद्यालयों में अध्यापक रहे। गत वर्ष आपने उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद से बी. एड. की परीक्षा पास की और इस वर्ष एम. एड. की तैयारी कर रहे हैं।

श्री मिश्र को अध्यापन एवं कविता के अतिरिक्त फोटोग्राफी और भ्रमण में विशेष रुचि है।

आपने अपनी बहुत सी कविताएँ और निबन्ध स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए हैं।

गीत

(१)

दीप कितने बुझ चुके हैं प्रिय तुम्हारी राह में।

याद है तुमने कहा था प्यार पर हम मर मिटेंगे,
याद है तुमने कहा था भँवर में संग-संग बहेंगे—
और युग-युग तक जलाएँगे दिए तूफान में,
दीप कितने बुझ चुके हैं प्रिय तुम्हारी राह में।

फिर जमाने की थपेड़ों में बही तुम इस कदर—
तोड़ कर मेरा हृदय हो छुप गई जाने किधर,
अश्रु पीके थक चुका हूँ प्रिय तुम्हारी राह में,
दीप कितने बुझ चुके हैं प्रिय तुम्हारी राह में।

मैं किरण-कण हूँ अकेला कब तलक जलता रहूँ,
मैं तुम्हारी साधना में कब तलक ढलता रहूँ,
और कब तक यूँ जलाऊँ बुझते दिये तूफान में,
दीप कितने बुझ चुके हैं प्रिय तुम्हारी राह में।

(२)

देख देख कर हारा तुमको
पर आँखें नहीं भरीं।

कितनी बार तुम्हें पूजा है,
कितने तुम पर पुष्प चढ़ाए,
मधुर-मधुर भावों से भर कर,
कितने तुम पर गीत बनाए,
पर अब तक भी मेरी–
साँधें नहीं भरीं।

तेरा अनुपम रूप देख कर–
मैं ऐसा भूला बौराया,
अपने को भी खोया मैंने,
फिर भी तेरा अन्त न पाया,
बहुत भरा पर अब तक–
रीती है गगरी।

जीवन मेरा शूल भरा है–
केवल तेरा एक सहारा,
घोर अन्धेरा छाया चहुँ-दिशि,
देख नहीं पड़ता एक तारा,
हाथ पकड़ ले तू मेरा,
ये राहें हैं संकरी।

श्री तुकाराम राव कुलकर्णी

श्री तुकाराम राव कुलकर्णी का जन्म १५ अगस्त, १६२८ को मैसूर प्रदेश के गुलबर्गा ज़िले में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा अपने जन्म-स्थान चितापुर में हुई और उसके बाद आपने हैदराबाद आकर हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की मैट्रिक तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण की।

श्री कुलकर्णी को प्रारंभ से ही सार्वजनिक सेवा एवं हिन्दी-प्रचार के कार्यों में रुचि रही। सन १६४२ से ४६ तक आप हैदराबाद स्टेट कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता रहे और सेडम में रह कर तालुका कांग्रेस कमेटी के संगठन को दृढ़ बनाने का प्रयत्न करते रहे। सन् १६४७-४८ में श्री कुलकर्णी को हैदराबाद-विलय-आन्दोलन में भाग लेने के कारण १० मास का कारावास हुआ।

पुलिस कार्यवाही के बाद श्री कुलकर्णी ने अपना अधिक समय हिन्दी-प्रचार के कार्य में लगाया। सन् १६४० में आपने चितापुर और सेडम में हिन्दी केन्द्रों की स्थापना की और बाद में हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद के केन्द्रीय कार्यालय में कई वर्षों तक व्यवस्थापक पद पर कार्य करते रहे। आजकल आप महबूब कालेज हाईस्कूल, सिकन्दराबाद में अध्यापक हैं।

गौरीशंकर की चोटी से

मैंने सुना था,
मानव तू महान है,
दृढ़-प्रतिज्ञ
साहस तेरा अति अदम्य है
अकथनीय है तेरी उदारता
श्रद्धा, स्नेह और कृतज्ञता।
मैं तो जड़ हूँ
अटल और अडिग
नैनहीन, मूक और अपढ़ हूँ
पाषाण-मय है हृदय मेरा।
साध मेरे जीवन की इतनी,
तेरे गौरव-गरिमा के सोपान बनूँ
प्रतिष्ठा का पद-चिन्ह बनूँ,
और बनूँ तेरी महानता का द्योतक।
चाह मेरी थी,
तीनों लोक में विचर-विचर कर
तेरी कीर्ति का, यश-वैभव का,
महा-शक्ति का गीत सुनाऊँ।
पर कैसे ?
मैं तो यहाँ से हिल नहीं सकता !
सो, मेरे अक्षय. अघट, उन्नत शिखर
तेरी शक्ति की ऊँचाई दर्शाने
वर्षा, आतप, हिम के प्रहार

सहते-सहते निशि-दिन मैंने
समय बिताया शून्य-गगन में ।
करता रहा मैं ईश-निवेदन
निशि-बासर औ' साँझ सबेरे—
'धीरज तू न खो पाए कभी
आत्म-विश्वास तेरा अटल हो
दर्शन से तेरे,
युग-युग की चिर-अभिलाषा मेरी पूर्ण हो
कल्पित चित्र साकार बने ।'
दल तेरा जब चल पड़ा पुनः
रोम-रोम में हर्ष समाया,
मेरे वक्षस्थल पर बढ़ते
पल-पल तेरे प्रति-पग देख,
बन जाती थी—
आशा अटल और विश्वास दृढ़तम ।
देख कभी तो तेरा म्लान-मुख,
पाषाण-हृदय भी गल-गल जाता
शुभ-वेला में एक दिवस
विजयी देख प्रत्यक्ष जगत में,
क्या बतलाऊँ,
माना था कितना !
सुख सन्तोष और शान्ति मैं,
आशा मेरी अब पूर्ण हुई थी ।
मानव की महानता का—
शिखर बना था मापदण्ड ।
तेरी शक्ति का, विपुल ज्ञान का
एकाकी जीवन की समस्या
फलीभूत हो गई थी अन्त में ।

पर हाय ! हुआ यह कैसा ?
अद्भुत अनर्थ वज्र-निपात ।
अहंकार में अन्धा बन कर
तूने अट्टहास किया,
चरणों में अर्पित आत्मा को भी
ठुकराने का साहस किया,
पल-भर को भी रहा न मानव
चिर-जीवन में तेरी साध
'पद दलित !' शब्द ने किया
मेरे हृदय पर कुठाराघात ।
जो करता है तेरी वंदना
उसके प्रति यह विषम भावना ?
मानव महान, तू ऊँचा चढ़ कर
संकीर्ण क्यों बना ?
क्यों इतना कठोर और निर्मम हुआ
क्या तेरा आदर्श यही है ?
जिसने तुझको उन्नत किया
तेरे हाथों उसका ही पतन,
"उच्च शिखर को पद दलित कर
प्रकृति पर मैंने विजय प्राप्त की"
सुन कर तेरी ऐसी घोषणा
हृदय मेरा विदीर्ण हुआ ।
अब जाना मैंने
तू है,
राजनीति का एक खिलाड़ी ।
ऊँचा कभी तो कभी है नीचे
कभी हँसा तो कभी रो दिया,
अपनाता है कभी किसी को

क्षण भर में ही फिर ठुकराता
सत्य, अहिंसा औ' विश्वास की
लेकर आड़
अपनी दुनिया तू है बसाता।
कल्पित-आदर्श का पुजारी भला
आत्म-भाव का मूल्य क्या जाने ?
चढ़ कर ऊँचा टिक न सका तू
क्षण भर को भी रुक न सका तू
चरणों में जिसका स्थान उचित हो
मस्तक पर वह पनपेगा कैसे ?
सुने जगत अब उसी शिखर से
"विजय नहीं यह महा मानव।
साहस केवल उसके तन का"
यह है तेरी,
कृतघ्नता की करुण कहानी
अहंकार की अमिट निशानी

श्री गिरिजा शंकर शर्मा

श्री गिरिजा शंकर शर्मा का जन्म पंजाब प्रान्त के नारनौल नाम के स्थान में सन् १९२८ में हुआ। आपकी शिक्षा हैदराबाद में हुई और आपने यहीं रह कर इण्टरमीडियट तथा बी. ए. की परीक्षा पास की तथा हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई से 'साहित्य-सुधाकर' हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग से 'साहित्य रत्न' एवं हिन्दी विद्यापीठ, देवघर से 'साहित्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद भी श्री शर्मा पंजाब गए और वहाँ पुलिस विभाग में 'स्टेनोग्राफर' का कार्य करते रहे। बाद में पुनः हैदराबाद आए और क़रीब सात वर्षों तक एक सरकारी कार्यालय में टङ्कण का कार्य करते रहे।

इस समय श्री शर्मा उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्र हैं और हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की तैयारी कर रहे हैं।

श्री शर्मा 'गिरीश' उपनाम से कविता करते हैं। आपने बहुत-सी कहानियाँ और कविताएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं और आशा है कि आप निकट-भविष्य में अपनी कहानियों और गीतों का संग्रह प्रकाशित करेंगे।

श्री शर्मा को साहित्य के अतिरिक्त संगीत और सामाजिक कार्यों में रुचि है।

मुक्तक

हारका दे हृदय तड़पा, जीत वह है,
शत्रु को अपना बनाले प्रीत वह है,
शक्ति से अपनी निराशा को भगा दे—
मौत को जो ज़िन्दगी दे, गीत वह है।

गहन-तम परिधान जिसका, यामिनी है,
कड़क घनकारी गरज वह दामिनी है,
शब्द जिसके चित्र बन मन में समाएँ—
समझ लो बस वही कविता-कामिनी है।

वेदना की कसक बढ़ पलती रही, पलती रही,
हृदय की वह आग जलती ही रही, जलती रही,
इस हृदय में बसे हो तुम, कहीं न जल जाओ—
नयन-सरिता इसलिए बहती रही, बहती रही।

स्वाभिमान यह इतना क्यों हिस्से आया—
स्वीकार नहीं क्यों इसको जग की मादकता?
अपने हाथों अर्जन कर यह विष ले लेता,
दान-रूप अमृत भी इसको ना रुचता।

अन्तस में चाह उठी थी कैसे अनजाने—
यह बात समझ में मेरी अब तक ना आई,
भाव-मग्न था तन्द्रिल-सा मैं खोया-खोया,
जाने कैसे अधरों ने आभा पाई।

मीत

परसों जो बिजली चमकी थी, वह तो तुमने देखी होगी।

उमस हो रही थी जब मन में, प्राण-परवेरू अति व्याकुल थे,
उर की धड़कन तीव्र हो चली, रोम-रोम मेरे आकुल थे,
कड़ी धूप थी, धरा धधकती, स्वयं गगन ने पीड़ा आँकी,
याचक बन कर सावन आया, उसने मुझसे पीड़ा माँगी,
बादल बन कर बरस पड़े तब मेरे आँसू उमस मिटाने,
परसों जो बरसात हुई थी, वह तो तुमने देखी होगी।

जग तो काला स्वयं किन्तु जब, मन में छाया घोर-अँधेरा,
जग भटकाता मुझको था औ' दूर हो चला प्रीति-सवेरा,
जीवन, जीवन ना रह जाता, शायद वह बन जाता सपना.
अन्धकार में बह जाता मैं, शायद पथ ना मिलता अपना,
याचक बन कर बादल आया, उसने मुझसे ज्वाला माँगी—
परसों जो ज्वाला दहकी थी, वह तो तुमने देखी होगी।

उपवन की अमराई फूली, पहनी वर्षा ने पायलिया,
प्राण-पपीहा पी-पी स्वर में, आकुल होकर फूट रोलिया,
याचक बन कर कोयल दौड़ी, तुझ से दो-क्षण वाणी लेने,
उसकी मधुरिम कूक सुनी औ' तेरी वाणी सुन ली मैंने,
अपने अन्तस को दुलराया, तेरी कोकिल-वाणी सुन कर,
परसों प्राण-पपीहे की 'पी', शायद तुमने सुनली होगी।

श्री देवराज शर्मा

श्री देवराज शर्मा का जन्म सन् १६२६ में हुआ। आपने प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के बाद संस्कृत का अध्ययन किया और संस्कृत में 'शास्त्री' परीक्षा पास की। उसके बाद आपने हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग से साहित्य-रत्न की उपाधि प्राप्त की।

श्री शर्मा आजकल मारवाड़ी हिन्दी विद्यालय, बेगमबाजार, हैदराबाद में हिन्दी एवं संस्कृत के अध्यापक हैं।

श्री शर्मा ने संस्कृत में लिखे हुए अपने बहुत से निबन्ध संस्कृत-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए हैं। आशा है, आपकी हिन्दी कविताओं का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा।

श्री शर्मा को साहित्य के अतिरिक्त संगीत एवं अभिनय में विशेष रुचि है।

विद्रोही

मैं विद्रोही सोये युग में
विद्रोह मचाने आया हूँ,
नभ के दरवाज़े तोड़ अरे,
भूडोल डुलाने आया हूँ।

सागर-मंथन का कालकूट
सब एक घूँट में पी डाला,
चपला के चंचल धागों से
अवनी-अम्बर को सी डाला।

शेषों के मस्तक काट अरे!
युग-माल बनाने आया हूँ,
मैं विद्रोही सोये-युग में
विद्रोह मचाने आया हूँ।

भैरव की भीषण-भूख लिए
मैं टूट पड़ा घर नगर-नगर,
ताण्डव की तिरछी-तालों पर
मैं झूम उठा बन प्रलयंकर।

झंझा के घन-सा घुमड़ अरे,
सारा ब्रह्माण्ड हिला दूँगा?
मैं महाकाल की चाल रोक,
जड़ता की ज्वाल जला दूँगा।

मुझको दुनिया की क्या परवाह
मैं ज्वाल जलाने आया हूँ,

मैं विद्रोही सोये युग में
विद्रोह मचाने आया हूँ।

मैंने मानव की काया को
दो पाटों में पिसते देखा,
भोले उर के अरमानोंको
मन ही मन में छिलते देखा।
मैंने देखा—भूखी लाशें
रोटी-रोटी चिल्लाती हैं,
सोने—चाँदी के महलों में
विप्लव की आग लगाती हैं।
मैं महाक्रान्ति का सूत्रधार
बन, आग लगाने आया हूँ,
मैं विद्रोही सोये युग में
विद्रोह मचाने आया हूँ।

आँधी-तूफाँ मेरा नर्तन,
मेरा गर्जन युग परिवर्तन,
मैं महाकाल की मुंडमाल-
ले, नाचा करता छूम-छनन।
मैं विद्रोही, मेरी वाणी-
लावा-पावक बरसाती है,
दुर्बल-मानव को मानव के
जीने का मोल बताती है।
मत रोको मुझको, मैं जीवन का
मोल बताने आया हूँ,
मैं विद्रोही सोये युग में
विद्रोह मचाने आया हूँ।

पन्द्रह अगस्त

ओ भारत के स्वाधीन-दिवस,
नव-भारत के ओ जन्म-दिवस,
१५ अगस्त तुम हो प्रशस्त ।

तेरे चरणों पर,
आज झुक रहे कोटि-कोटि उन्नत मस्तक,
इन कोटि-शिरों के कुंकुम से
तव दिव्य-चरण चर्चित-अर्चित ।

ओ लोकमान्य की अमर-साध,
ओ राष्ट्रपिता के जीवन धन,
ओ देशभक्त दिव्यात्माओं की आशाओं के मूर्त-रूप,
तुम शस्य-श्यामला भारत माँ के उन्नत शिर के दो सिन्दूर ।

साकार हुई साधना-अर्चना
आज सभी के जीवन की,
कण-कण में आज नया उत्सव,
जन-जन में व्यापी नव-उमंग,
आमोद लुट रहा बिना मोल
खुशियाँ फैली बेनाप-तोल,

"भारत जननी की जय" ध्वनि से
है गूँज रहा नभ-ओर-छोर ।
है आज दिवाली, आज दशहरा; और आज ही होली भी,
बेजोड़ मिलन त्योहारों का
जलसा खुशियों का बे-मिसाल

क्या भेंट करें ?....
बस श्रद्धा से दो हाथ और निज नत-मस्तक ।

श्री दुलीचन्द अग्रवाल

श्री दुलीचन्द अग्रवाल का जन्म सन् १९२९ में हुआ। आपको स्कूल-कालेजों में अध्ययन का अवसर नहीं मिला और आपने स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी और उर्दू का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

श्री दुलीचन्द हैदराबाद के कुछ प्रमुख व्यापारियों में से हैं। आप हैदराबाद 'फुटकर खाद्य-विक्रेता-संघ' के मन्त्री, 'आन्ध्र फ्लोर मिलर्स असोसिएशन' के उपाध्यक्ष और 'राइस सप्लाइज़, मार्केटिंग कमेटी' के अध्यक्ष हैं।

श्री अग्रवाल को सामाजिक कार्यों और पत्र-कारिता में विशेष रुचि है। आप हैदराबाद के बहुत से सामाजिक और शैक्षणिक संगठनों में सक्रिय कार्य कर रहे हैं तथा हैदराबाद से निकलने वाले उर्दू-साप्ताहिक 'नया समाज' के सम्पादक हैं।

श्री अग्रवाल ने अब तक 'गोवा के गीत', 'आज़ाद भारत' और 'बल्लभ श्रद्धाञ्जलि' नाम से तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं। निकट भविष्य में आप गीतों के दो संग्रह प्रकाशित करने वाले हैं।

प्यार तुम्हारा पा न सका मैं

मौन निमन्त्रण मिला तुम्हारा,
लेकिन तुम तक आ न सका मैं !

मेरी अगवानी में तुमने आशा-दीप जलाए होंगे,
प्रेम-विह्वल हो शलभ न जाने कितने जलने आए होंगे,
कितने अरमानों से तुमने घर और द्वार सजाया होगा,
उर-वीणा के तारों ने भी नूतन राग सुनाया होगा।
मुझको तुम अपराधी कह लो,
प्यार तुम्हारा पा न सका मैं।

मन समझा कर तुमने अपना सारी रात जगाई होगी,
देख गगन में चाँद विहँसता आँखें भर-भर आई होंगी,
छलक-छलक कर आँखों ने जब मोती खूब गिराए होंगे,
तब काजल के काले धब्बे गालों पर इतराए होंगे।
संकेतों ने गीत दिए थे,
लेकिन उनको गा न सका मैं।

अन्तर मन से प्यार मचल कर आँचल से टकराया होगा,
सरगम छेड़ा होगा मन ने, मानस भर-भर आया होगा,
मेरी निठुराई को तुमने पत्थर की उपमा दी होगी,
आशा के कोमल कुसुमों पर तुमने धूल चढ़ा ली होगी।
तुमने सपनों में भी पूजा,
पर तुम को अपना न सका मैं !

जीवन कितना भार हो गया

जाने किसने अपनी चितवन, मेरे नयनों में उलझा दी,
किसे बताऊँ तब से मेरा जीवन कितना भार हो गया।

हैं तन-प्राण प्रकम्पित मेरे
साँसें तक हो गयीं परायी
क्यों इतना मृदु-राग उलीचा
नापे बिन मन की गहराई
सुधियों ने सौ-सौ करवट ली
जब जीवन के रंगमंच पर
तब साधों ने सुरभित सपनों—
की गलियों में ली अंगड़ाई।

पीड़ा का उपहार तुम्हारा जनम-जनम तक साथ रहेगा,
अश्रु आरती करने निकले पलकों का शृंगार हो गया।

इतना मचला हास अधर पर
मानस में नव-कमल खिल गए
इतने मचले गीत अधर पर
उर-वीणा के तार हिल गए
इतनी मचल मचल कर पूनम
नहायी नभ के नीले पट पर
जिसकी प्रणय कहानी कहते-कहते
दोनों अधर मिल गए।

मधुर-कल्पना के पंखों पर किसने ताजमहल बुन डाला,
भाव-भंगिमा बनी चितेरी हृदय राजदरबार हो गया।

निशा बाँटने चली निमन्त्रण
ऊषा देने चली बधाई
ललित लाज की चूनर ओढ़े
सन्ध्या मन ही मन मुस्काई

खड़े कदम्ब के नीचे कान्हा
जाने किसकी बाट देखते
राधा वंशी की धुन सुन कर
आँचल को फहराती आई।

जय-माला बन गई तुम्हारे मौन-समर्पण की मनुहारें,
पल, दो-पल का खेल तुम्हारा अरे गले का हार हो गया।

श्रीमती विमला खण्डेलवाल

श्रीमती विमला खण्डेलवाल का जन्म सन् १६३० में हैदराबाद के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वैश्य-परिवार में हुआ। आपके पिता श्री मदनगोपाल खण्डेलवाल कुछ उन इने-गिने व्यक्तियों में हैं, जो लक्ष्मी का कृपा-पात्र होने पर भी अपने आदर्शों के लिए बड़ा से बड़ा त्याग करने को तैयार रहते हैं।

श्रीमती खण्डेलवाल की प्रारंभिक शिक्षा पिता की देख-रेख में घर पर हुई। उसके बाद आपने महिला विद्यापीठ, प्रयाग की सरस्वती परीक्षा तथा सेकेण्डरी बोर्ड, प्रयाग से इण्टरमीडियट की परीक्षा उत्तीर्ण की।

बाद में टाइफायड होने के कारण आप अपनी कालेज की शिक्षा जारी न रख सकीं; किन्तु स्वाध्याय से आपने हिन्दी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है।

श्रीमती खण्डेलवाल को कविता के अतिरिक्त कहानी और नाटक लिखने में रुचि है। आपने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं, जिनमें अधिकांश गेय हैं। आशा है, आपके गीतों का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा।

गीत

(१)

जब से प्राण, तुम्हें देखा है।

नभ का नीलापन मुसकाता
धरती का कण-कण गाता है,
कलियों के मुख से सौरभ का
आँचल हट कुछ कह जाता है।

तन में पुलक, हृदय में कम्पन,
आँखें आर्द्र हुई जाती हैं,
रूप, रंग, रस. गंध बरसते—
जब से प्राण, तुम्हें देखा है।

अभिशापों से घिर मुसकाऊँ-
तुमने वह विश्वास दे दिया,
जीवन को वरदान बनाऊँ-
तुमने वह उल्लास दे दिया।

पारस-सा पा परस तुम्हारा
मेरा कण-कण स्वर्ण बन गया,
सब कुछ बदल गया अनजाने
जब से प्राण, तुम्हें देखा है।

प्राणों के मधुवन में जैसे
मुरली का स्वर बिखर रहा है,
सांसों की राधा तन्मय है-
रूप-दीप तप निखर रहा है

तुलसी की निष्ठा, मीरा की–
तन्मयता से भीग रही मैं,
गीतों का संसार मिल गया—
जब से प्राण तुम्हें देखा है।

(२)

हो सकी पूजा न पूरी, बुझ न जाना दीप मेरे।

साधना की ओट देकर, साध से तुमको जलाया,
अर्चना में साँस का हर सुमन फिर तुम पर चढ़ाया,
हँस उठे तुम हँस उठा अस्तित्व का संसार मेरा,
स्वप्न में उलझा अधूरे, बुझ न जाना दीप मेरे।

यह तुम्हारे रूप की लौ, शलभ जिसके प्राण आतुर,
जल रहे तुम, जल रहे हम, पर तुम्हारी ज्योति पाकर,
क्षार कर देना जलाकर रह न जाये एक कण भी,
जलन की गाथा अधूरी बुझ न जाना दीप मेरे।

हैं अनेकों दीप रवि-शशि और वे जगमग सितारे,
छोड़कर लेकिन तुम्हें कोई न उर भाया हमारे,
मैं अकिंचन बिजलियों के दीप लेकर क्या करूँगी,
कुटी के सिंगार तो तुम, बुझ न जाना दीप मेरे।

धूल के तुम, धूल की मैं, धूल का नाता हमारा,
ज्वाल का उन्माद तम-मय पंथ का संबल सहारा,
हम धरा के शूल, नभ के फूल की क्या बात जानें,
मैं बुझूँ जब तक न साथी बुझ न जाना दीप मेरे।

करुणा

गौतम-विभूति, ईसा-अन्तर का अमर गान,
मानव महान् गान्धी की जीवन-निधि महान्,
हे आर्द्र-उरे, शबनम गद्‌गद् शेफाली सी,
वसुधा-वीणा पर मृदु-विहाग की करुण तान।

श्रम-क्लान्त दिवस की पलकों पर विश्रान्तिमयी,
रजनी के रत्नजटिल आँचल की छाया-सी,
प्रतिदान प्रभा तम को देती, दीपक द्युति की,
निज प्रभा-पुलकमय आभा-मय मृदु माया-सी।

भव-पंक खिली कल-कंज-कली-सी साश्रु नयन,
शुचि-शुभ्र-प्रात की प्रथम रेख शुभ्रता-अयन,
पीयूष-पान-सा गरल तुम्हें कटुताओं का,
सुमने, सुमनों सी सस्मित सखि, रत शूल-चयन।

तुम नहीं उषा की छवि सहास उल्लासमयी,
तुम नहीं साँझ-सी मदिर हासमय लासमयी,
नीहार सजल पीयूष वार्षिणी ज्योत्स्ना-सी,
करुणे, तुम तो बस स्निग्ध, सुशीतल सुधामयी।

चिर क्षमामयी, ओ मधुर नेह-सी नेहमयी,
ममता सी मंजुल मृदुल सरल वात्सल्यमयी,
कोमलता से भी कोमल, किन्तु नहीं दुर्बल,
दुर्बल मानव की शक्ति प्रबलतम, शक्तिमयी।

तव नत नयनों की भीगी चितवन सम्मुख अलि,
अन्याय, दर्प-मस्तक बरबस नत हो जाते,

पारस-सा परस तुम्हारा पा पावन पुनीत,
कलुषित हो अकलुष सहज, स्वर्ण-आभा पाते।

तुम उर आतीं, उर-बन्धन खुल-खुल से जाते,
तुम दृग छातीं, दृग दिव्य-दृष्टि जैसे पाते,
पद, जाति, रंग के भेद व्यर्थ ये अनगिन सब—
तुम समझातीं, 'मानव' समान, मानव नाते।

जग खिंच आए तुम में वह चुम्बक-आकर्षण,
सम-दृष्टिमयी समभाव मधुर-कटु अपनातीं,
है घृणा-योग्य अपराध, नहीं अपराधी यह—
विश्वास तुम्हारा सरल सहज तव उर-थाती।

तुम नेह कभी, तुम क्षमा कभी, सान्त्वना कभी,
मानवता की पहचान, दिव्य मानवता भी,
आलोकमयी; आलोकित अलि तुम रूप विविध,
कल्याणमयी, श्री-सुषमामय तव रूप सभी।

अपने ही आघातों हत-आहत मानव को,
है आज अपेक्षा सबसे अधिक तुम्हारी ही,
पथ-निर्देशन-हित भूले भटके जीवन को,
है आकुल विकल प्रतीक्षा आज तुम्हारी ही।

हो रहा शुष्क मरु-थल मानवता-उर, करुणे,
स्वागत, कल-गानमयी-सी मुसकाती आओ,
इस घृणा-वैर-अभिशाप-दग्ध भू-उपवन में,
स्वागत, मलयानिल वरदाँचल बन लहराओ।

तुम ऐसी आओ, जग-तन नव-जीवन आए,
तुम ऐसी छाओ, जग-मन नव-चेतन पाए,
तुम ऐसी आ छा बस जाओ जग-प्राणों में,
जग मुग्ध मगन अब गीत तुम्हारा ही गाए।

श्री चक्रवर्ती

श्री चक्रवर्ती का जन्म सन् १६३१ में हुआ। आपकी मातृभाषा तेलुगु है। श्री चक्रवर्ती की प्रारंभिक शिक्षा बिहार में हुई। आपने सन् १६५३ में उस्मानिया विश्वविद्यालय से बी. कॉम. की उपाधि प्राप्त की।

इसके पश्चात् श्री चक्रवर्ती कुछ दिनों तक हैदराबाद से निकलने वाले अंग्रेज़ी दैनिक 'दकन-क्रानिकल' में सहायक सम्पादक रहे। तत्पश्चात हिन्दी की ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा से आपने नौकरी छोड़ी तथा नागपुर विश्वविद्यालय से बी. ए. और उस्मानिया विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।
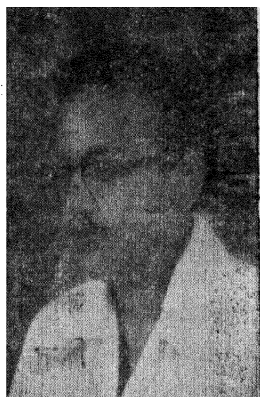
आजकल श्री चक्रवर्ती उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आपकी भाषा प्राञ्जल है तथा प्रसादगुण से युक्त है। आपका 'पीड़ा' नामक एक विप्रलम्भ खण्ड-काव्य प्रकाशित हो चुका है जिसकी हिन्दी जगत् में काफी प्रशंसा हो रही है। निकट भविष्य में आपकी चार पुस्तकें—धर्म के खण्डहर (नाटक), कर्ण का आत्मदान (पौराणिक खण्ड-काव्य), दृष्टि-दान (कविता संग्रह), और भग्नावशेष (उपन्यास)—प्रकाशित होंगी।

बापू

जय हे ! जय हे !!
देव-पुण्य-भूमि के सन्त हे !

अटल सत्य के पथिक भद्र तुम,
कुटिल विश्व के मनुज नम्र तुम,
जले दीप-से दिग-दिगन्त हे !

जन-जीवन में जलद-शुभ्र तुम,
किन्तु, क्रान्ति में तड़ित-रुद्र तुम,
शाश्वत संस्कृति के वसन्त हे !

विस्मित युग के रंक क्षुद्र तुम,
कूटनीति में विकट वक्र तुम,
क्रूर करों से गिरे, हंत हे !

देव-पुण्य-भूमि के सन्त हे !
जय हे ! जय हे !!

गीत

हृदय में दबी हृदय की तपन।

जानें क्यों लहरती धार पर
लगती नाव उसी कछार पर,
जहाँ खिले थे हमारे सपन,
हृदय में दबी हृदय की तपन।

सुप्त यहाँ चिर परिचित मधुरव
औ' मानस-कूलों के कलरव,
गए बिखर अनमोल मधुर छन
हृदय में दबी हृदय की तपन।

प्राण मिला कर इसी किनारे
बिछुड़े जहाँ हम तुम सबेरे,
सिसकता वहीं चिर सूनापन,
हृदय में दबी हृदय की तपन।

श्री राजा दुबे

श्री राजा दुबे का जन्म १३ जुलाई, १९३२ को हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा सागर (मध्य प्रदेश) में हुई और आपने सागर विश्व विद्यालय से ही हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

शिक्षा समाप्त करने के बाद श्री दुबे, हैदराबाद आए और कुछ दिनों तक आप यहाँ से प्रकाशित होने वाली मासिक साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करते रहे। आजकल आप विवेक-वर्धिनी कालेज, हैदराबाद में हिन्दी के प्राध्यापक हैं।

श्री दुबे, हिन्दी कविता की नई धारा—प्रयोग-वादी धारा में विश्वास रखते हैं। जब से आपने लिखना प्रारंभ किया तभी से आप इस धारा की श्रीवृद्धि में योगदान दे रहे हैं।

श्री दुबे ने अपनी बहुत सी कविताएँ हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'एक हस्ताक्षर' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

उपेक्षित व्यक्तित्व के अन्तिम दो शब्द

उड़ेलो
तटों की उपेक्षाएँ
उड़ेलो
सीपियाँ, बन्ध्या समझ
न दो आर्द्रताएँ
आन्तरिक इन्हें—यों ही सही।
घृणा से बँधी मुट्ठियों में
भरो अमंगल-रेत यह
और फेंको उसे
प्रसव भोगते हुए सृजन पर यों।
नकारो अध-बना अस्तित्व मेरा
विकसते व्यक्तित्व को
सर्प-फन सा कुचल कूटो—
यों ही सही।
किन्तु मैं समर्पित हूँ तुम्हें
न; अस्वीकारूँगा नहीं
यह जो तुम्हारा देय है।
तड़....तड़ातड़....तड़....
अनवरत चोटें,
हाथ में, पाँवों में, वक्ष पर
कीलें ठुकें; ठुकें अनगिनत कीलें!
क्रास पर लटका हुआ मैं
सहूँगा, सब कुछ सहूँगा
वहिष्कृत हूँ, अस्वीकृत हूँ, उपेक्षित हूँ, रहूँगा।

पर एक दिन
देख लेना तुम्हीं—देख लेना
वे सिद्धियाँ, उपलब्धियाँ
पीठ पर लादे हुए
गोद में मेरी कमी धरते फिरोगे,
देख लेना तुम्हीं—देख लेना
और मैं उपेक्षित
असीसूँगा तुम्हें
क्रास पर लटका हुआ भी।

तीन आत्म कथ्य

(१)

सीमित परिधियाँ........
रूप-रचना
सृजन की उपलब्धियाँ—सब शून्य
बहुत छोटे आदमी के
ओ बहुत छोटे स्वप्न,
कसमसाओ मत,
बहुत संभव—
विवशता सुकरात जन्में।
परिधियाँ विस्तार दें।
शून्य रूपायित करे,
तुम्हें आकार दे।

---

(२)

अभोज्य मछलियाँ....
बदबूदार आत्मा
व्यक्तित्व की उपयोगिता—कीच केवल कीच
बहुत सँकरे पोखरों के
औ बहुत गँदले जल,
उपेक्षित हंस-पाँतों से
लहर करवटों से दूर,
खलबलाओ मत,
बहुत संभव असमर्थता—
मोती छिपाए सीपियाँ,
मेघों भरा आकाश उगले।
मछलियाँ ईंधन बनें।
कीच, कमल बोए,
अतर्कित आस्था दे तुम्हें।

(३)

अपूर्ण आकृतियाँ....
हाँफती चेतना
गन्तव्य दिशाएँ : वास्तव की प्रतिक्रिया : दिग्भ्रम
रेंगती परछाइयों के
औ टूटते अस्तित्व-कन,
किसी आशीष करुणा-कोर से वंचित
सुगबुगाओ मत,
बहुत संभव तिरस्कार—
कटे शीष, उघड़ी टाँगे, गले हाथ
फिर दे जाए तुम्हें।
दिग्भ्रम, नदियों के द्वीप नहीं;
दिशा देश का दें,
माथे पर चाँद
वक्ष पर सूर्य धरें।

श्रीमती यमुताई जालनापुरकर

श्रीमती यमुताई जालनापुरकर का जन्म सन् १९३२ मे हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई। तत्पश्चात् आपने उस्मानिया विश्व-विद्यालय से इण्टर मीडियट परीक्षा उत्तीर्ण की तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य रत्न' की उपाधि प्राप्त की।

श्रीमती यमुताई को हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत के अध्ययन में रुचि है। आप संस्कृत की प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण हैं। आजकल आप हैदराबाद के एक विद्यालय में अध्यापिका हैं।

श्रीमती जालनापुरकर ने अपनी कुछ कविताएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। आशा है, आपकी कविताओं का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा।

राहिन

प्रियतम तुम हो सुकुमार पथिक,
मैं राहिन हूँ कण्टक-पथ की,
तुम रवि का मधु अनुराग,
और मैं तमो-राशि नीले नभ की।

बाधाएँ मेरी हैं साथिन,
विपदाएँ मेरा है जीवन,
झँझाओं में खेली कूदी,
हैं शूल मुझे सुकुमार सुमन।

मैं प्रणय-दीप की रही शलभ,
जलना-भुनना मुझको है शुभ,
जल भुन कर भी मुझको पाना,
आनन्द अलौकिक वह दुर्लभ।

तुम सीखे प्रेम शलभ का सा—
लेकिन न उसी का सा जलना,
मत बनो अलि, जो चूम कली,
उड़ जाता, यह तो है छलना।

साहस बटोर भी तुम सारा—
यदि साथ मुझे अपना दोगे,
कुछ कदम साथ चल तुम मेरे,
थक जाओगे, हट जाओगे।

आखिर तो मुझको चलना है—
एकाकी ही पथ पर अपने,
है क्षणिक तुम्हारा मिलन-पाश,
क्यों बाँध रहे मेरे सपने।

प्रिय, तुम यदि प्रण के पक्के हो,
तो उतर पड़ो कर्म-स्थल में,
हम दोनों मिल नभ के तारे भी—
तोड़ दिखा दें कुछ पल में।

होकर शरीर से कोमल भी—
यदि मन मजबूत बना लेंगे,
तो कार्य असम्भव हैं जितने,
सम्भव कर उन्हें दिखा देंगे।

सुख में तो हँसते हैं सब ही,
हम मुसकाएँगे दुःख में भी,
है जीवन नाम उसी का जो,
खिलता जाए संकट में भी।

श्रीमती विद्या मिश्र

श्रीमती विद्या मिश्र का जन्म सन् १६३४ में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा लखनऊ में हुई और उसके बाद आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से ही इतिहास विषय लेकर प्रथम श्रेणी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

शिक्षा समाप्त करने के बाद श्रीमती विद्या मिश्र कुछ दिनों तक गाँधी राष्ट्रीय विद्यालय, नान्देड़ में अध्यापिका रहीं। उन्हीं दिनों आपने उस्मानिया विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आजकल आप सर बन्सीलाल बालिका विद्यालय, बेगमबाजार, हैदराबाद में अध्यापिका हैं और पी. एच. डी. की उपाधि के लिए अनुसन्धान कार्य कर रही हैं।

श्रीमती विद्या मिश्र को अध्यापन कार्य और साहित्य के अतिरिक्त कला में रुचि है। आपने अपनी बहुत-सी कविताएँ और निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए हैं।
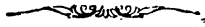
गीत

(१)

मेरे दुःख की गहराई को
जान सकोगे क्या ?

मेरे हृदय-सिंधु में भी
जो समा न सका,
जिसको मेरा नयन-नीर—
भी बहा न सका,
आहों का बन्धन न
जिसे बाँध सका,
प्राणों का क्रन्दन न
जिसे लाँघ सका,
उस मेरी अनन्त पीड़ा को—
पहचान सकोगे क्या ?

जो नभ के वक्षस्थल पर
तारे बन कर बिखरी
जो पुष्पों के आँचल पर
शबनम बनकर निखरी,
जो कोयल के स्वर की
मधुमय पीर बनी,
जो चातक के उर की
उन्मादक टीस बनी,
उसकी सीमा का कर—
अनुमान सकोगे क्या ?

जिस पीड़ा के तरु को
हृद्-तल में पाला-पोसा,
आशाओं की बलि दे
प्राणों के रस से सींचा,
जिसके होने से मेरे
जीवन का दुःख दूना है,
जिसको खो देने से
मेरा जीवन ही सूना है
उसके प्रति मेरी ममता को—
जान सकोगे क्या ?

---

(२)

मैंने गीत तुम्हारे गाए।

अरुणोदय से रंग चुरा कर,
सपनों को मधुर सजा कर,
हिय-पट पर प्रेम तूलिका से
मैंने तेरे चित्र बनाए।

पिक के स्वर में गीत सजा कर,
भाव-भाव साकार बना कर,
युगों-युगों से बैठी हूँ मैं,
तेरे पथ में नैन बिछाए।

तुझ से पाया मैंने जीवन
तू ही मेरा तन-मन-धन,
रोम-रोम में अंग-अंग में
तेरी ही प्रतिमा छाए।

श्री वेदप्रकाश शर्मा

श्री वेदप्रकाश शर्मा का जन्म सन् १९३४ में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई। उसके बाद आपने संस्कृत कालेज, लाहौर और ऋषिकुल,

ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार में रह कर संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया।
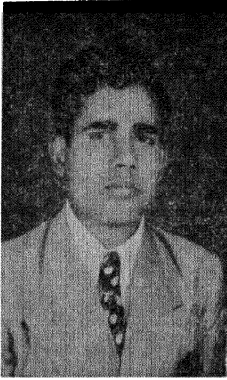
श्री शर्मा ने पंजाब विश्वविद्यालय से बी. ए. एवं हिन्दी और संस्कृत में आनर्स की उपाधि प्राप्त की है तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की है।

श्री शर्मा संस्कृत एवं हिन्दी के अतिरिक्त आयुर्वेद के अच्छे विद्वान् हैं। आपने आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार में रह कर आयुर्वेद का अध्ययन किया और बाद में "आयुर्वेद में पारद की महत्ता"—विषय पर निबन्ध प्रस्तुत कर आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय, झाँसी से 'आयुर्वेद वृहस्पति' की उपाधि प्राप्त की।

श्री शर्मा ने पत्र-पत्रिकाओं में बहुत से निबन्ध एवं कविताएँ प्रकाशित की हैं।

शरदागमन

नव-वधू बन शरद आई!

कास-किंशुक से सजा तन,
कुञ्ज-सा ले उल्लसित मन,
अंग में भर सब लुनाई,
नव-वधू बन शरद आई।

चन्द्र-कुंकुम भाल में ले,
अभ्र-घूँघट हाथ में ले,
ज्योत्स्ना-स्मित-रेखा हटाई,
नव-वधू बन शरद आई।

नील-चूनर धार सर पर,
रत्न-तारक वार उस पर,
सरित-सुषमा की बहाई,
नव-वधू बन शरद आई।

पुष्प से कर तन अलंकृत,
विहग-कुल से कण्ठ झंकृत,
मोद-मदिरा ढाल लाई,
नव-वधू बन शरद आई।

प्रबल शीतल-श्वास इच्छा,
ऋतुराज की करते प्रतीक्षा,
पूर्णता जिसमें समाई,
नव-वधू बन शरद आई।

नव-वधू-सी तन समेटे,
कुहर-चूनर मुँह लपेटे,
प्रिय प्रतीक्षा में लजाई,
नव-वधू बन शरद आई।

यौवन भरा उद्दाम तन में,
प्रिय मिलन की चाह मन में,
अलस-गति ले साथ आई,
नव-वधू बन शरद आई।

नभ-दिशाएँ सुभग सुन्दर,
भाव आकर्षण प्रबलतर,
रस वृष्टि कर सृष्टि रिझाई,
नव-वधू बन शरद आई।

श्रीमती कान्ता

श्रीमती कान्ता का जन्म २२ नवंबर, १९३४ को हैदराबाद के एक संभ्रान्त परिवार में हुआ। आपके पिता श्री पन्नालाल जी पित्ती आन्ध्र प्रदेश के कुछ उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने लक्ष्मी का कृपा-पात्र होने पर भी अपनी सार्वजनिक सेवाओं के द्वारा पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त की है। पित्ती परिवार ने आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी के प्रचार-कार्य में भी विशेष योग दिया है। हैदराबाद से 'कल्पना' नाम के साहित्यिक मासिक के प्रकाशन और सर बंसीलाल बालिका-विद्यालय के रूप में हिन्दी-माध्यम से बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था के द्वारा इस परिवार ने हिन्दी की प्रगति में पर्याप्त सहायता पहुँचाई है।

श्रीमती कान्ता की प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई और यहीं रह कर आपने उस्मानिया विश्व विद्यालय से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की है।

श्रीमती कान्ता ने पत्र-पत्रिकाओं में अपनी बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की हैं। आशा है, आपकी कविताओं का एक संकलन शीघ्र प्रकाशित होगा।

तीन कविताएँ

: एक :

एक गूँजा गीत
अधर से मेरे
तो वह,
तुम्हारे मौन से
कई गुना अच्छा है।
वह क्या मौन कि जो
मौन हो केवल,
वह क्या मौन कि जिसमें
दरसे नहीं प्राण की बेकली,
छुए नहीं करुणा प्रबल।
इसलिए जो हुआ, उचित हुआ—
कि मैंने जितना भी
अपने से, तुम से, जग से—
कहा-सुना, अच्छा है।
वह कैसा सन्नाटा कि जो
कोलाहल बन मन पर घिरे नहीं,
वह कैसा सन्नाटा कि जिसमें
आह की सुन पड़े न प्रतिध्वनि,
पत्थर-आँखों से आँसू गिरे नहीं,
इसलिए अकेले में जो किया मैंने—
करणीय था सब—
अपने और तुम्हारे दर्द पर

बजाय जड़ बैठ रहने के
सिर ही धुना—अच्छा है।

: दो :

न, सम्पर्क में मेरे मत आना
क्षण-भर को भी—
मित्र, परिचित और अपरिचित सभी,
कि मेरा सम्पर्क सुखद नहीं है।
अब कोई न जताए
शब्द, संकेत या मुद्रा से
कि ग़लत है यह धारणा,
क्योंकि वह सच ही, सुखद नहीं है।
तुम सब ऐसा कहते हो, कहो—
तो यह तुम्हारा ऊँचापन है।
मेरा तो अब
सब ओर से बे-लाग-सा जैसे
कुछ अजब ही मन है।
यों भी, यह दूरी इसलिए
कि छाया भी मेरी
अशुभ है शायद,
साथ शुभ कैसे होगा?
मत आओ समीप मेरे
कि अमंगल के वृत तुम्हें घेरें—
हाँ, इतनी विनय यह,
यदि सोचा हो कभी सचाई से—
बाहर भीतर मैंने क्या-क्या भोगा।

: तीन :

किसी ग़लत निश्चय का दम्भ, जो
घेरा डाले खड़ा है ?
या तन की दुर्बलताओं पर
अकथ क्लान्ति का भार पड़ा है ?
यह श्रान्त दृष्टि, नत-मस्तक,
ये सूखे, काँपते अधर—
इन पर किन कुंठाओं की पकड़ है ?
और श्वास-श्वास पर, बताओ,
किन अभिशापों की रगड़ है ?
सच कहती हूँ:
मुसकराओ खुल कर--
सब वेदना बिथरेगी;
जीवन के अलभ्य सुख पर
यदि काली घटा कोई घिरी हो,
तो बरसेगी, छितरेगी।
पैर जम गए, हाथ थम गए,
मन बोझिल हुआ, तो क्या ?
सब टूटेगी--हाँ,
कैसी भी यह जकड़ हो।
परवशताओं ने बाँधा है
या कि कर्तव्यों के रिक्त ने ?
मुझे संदेह भारी है--
कहीं तुम्हारी अपनी अकड़ हो....?

श्री देवेन्द्र

श्री देवेन्द्र का जन्म सन् १९३५ में मैसूर प्रान्त के चिटगोपा नाम के स्थान में हुआ। आपकी मातृभाषा तेलुगु है। श्री देवेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा गुलबर्गा में हुई। वहीं से आपने इण्टरमीडियट की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने उस्मानिया विश्वविद्यालय से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। इस समय श्री देवेन्द्र उस्मानिया विश्वविद्यालय में ही हिन्दी एम. ए., प्रथम वर्ष के छात्र हैं।

श्री देवेन्द्र 'कमल' उपनाम से कविता करते हैं। इन्होंने बहुत सी कविताएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं।

श्री देवेन्द्र ने मराठी से हिन्दी में दो नाटकों का अनुवाद 'मक्खीचूस' और 'मेरी धरती' नाम से किया है। आशा है, ये नाटक शीघ्र प्रकाशित होंगे।

श्री देवेन्द्र को साहित्य के अतिरिक्त चित्रकारी और संगीत से प्रेम है।

वसन्त

मेरे वसन्त का कहाँ अन्त,
कर डालेगा पल में पुलकित गंधित,
यह भू-नभ-दिग-दिगन्त।
मेरे वसन्त का कहाँ अन्त?
करती है गायन झूम-झूम
मेरी विटपी की डाल-डाल,
कल्पना बजाती है वीणा
देती हैं अनुभूतियाँ ताल,
मञ्जरिकाओं से सदा लदे –
रहते हैं ये मेरे रसाल,
क्रीड़ा-रत रहते हैं मेरे—
सर में शत-शत सुन्दर मराल,
जीवन-मरु में बहता हूँ मैं—
बन कर रसमय सुन्दर निर्झर,
भू पर हूँ नन्दन-कानन के—
पल्लव का मैं मञ्जुल मर्मर,
मैं अजर,
कहाँ मेरा पतझर?
कवि अमर,
किन्तु किसके बल पर?
मेरे बल पर
मेरे बल पर
है मूर्तिमन्त मेरे वसन्त में महानन्त,
है अन्तहीन मेरा वसन्त
मेरे वसन्त का कहाँ अन्त।

अरुणोदय

खुल गया क्षितिज का स्वर्ण-द्वार,
ऊषा की नव उजियाली में खो गया अवनि का अन्धकार।

रंग रहा लालिमा से है जल
खिल रहे जलाशय में शतदल
नव-सुमन-रानियों से मिलने आते हैं देखो अलि-कुमार।

फूलों को भुला, चुरा परिमल
परिमल में खोया स्वयं अनिल
मधु-गंध, पवन-पंखों पर चढ़ स्वच्छन्द लगा करने विहार।

है गई रात स्वप्निल-उर्मिल
आया प्रकाश झिलमिल-झिलमिल
हँसती है पहने किरण-वसन उल्लसित धरित्री बारबार।

नीड़ों से अपने निकल निकल
गाते हैं देखो मचल-मचल
इन वृक्षों से उन वृक्षों पर उड़ते फिरते पंछी-कुमार।

श्रीमती प्रेमलता जैन

श्रीमती प्रेमलता जैन का जन्म १० फरवरी, १६३६ को अजमेर में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा अजमेर में ही हुई। उसके पश्चात् आपने कलकत्ता से 'मैट्रिक' परीक्षा उत्तीर्ण की।

श्रीमती जैन गत कुछ वर्षों से हैदराबाद में हैं।

श्रीमती जैन को बचपन से ही कविता लिखने का शौक था। आपने अपनी बहुत-सी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं। आशा है, आपकी कविताओं का एक संग्रह शीघ्र प्रकाशित होगा।

श्रीमती जैन को साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि है।

कब्र की आँखें

देख, प्रलय-अन्धकार का शासन,
तूफानों से घिरता आता बादल
मुक्ति का प्रथम उभार ले,
बन्धनों का अन्तिम संहार ले,
लूट लिया जिसने—
रवि का प्रकाश-पुंज,
छीन ली शशि की मुस्कान,
बज रहा
जिसमें
महानाश का स्वर।
ओ अम्बर के तारे,
टूट पड़ो धरती पर—
जाग रहा जिसमें
नया इन्सान,
नया मानव।
नई सृष्टि का संघर्ष—
ज्वालामुखी-सा भीषण उद्गार,
उगल रहीं वे
कब्र की आँखें,
अंगारे-सी जल रहीं—
वे कब्र की आँखें।
कब्र की मिट्टी मचा रही उत्पात,
धूल भरे दामन से उगल रही आग,

विषम-विश्व की विषमता से—
रह रह उठती काँप
'सह्य नहीं' कहती चिल्लाकर
'मानव तेरा यह अत्याचार।'
क्यों—
मेरे शासक बनते हो ?
जानती हूँ—
खूब जानती हूँ तुम्हें—
कि तुम
ध्वंस-पथ पर बढ़ते हो--
बड़े विश्वास से,
बड़े दम्भ से,
मेरी मिट्टी को
ध्वंस-मय करते हो।
किन्तु
भूलना न कि
मैं—
अमर हूँ अजर हूँ,
मुझ में---
नया भारत पल रहा है,
नया हिन्द बन रहा है,
और नया इन्सान मुझसे ढल रहा है।
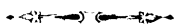
श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी

श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी का जन्म सन् १६३६ में हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई और निज़ाम कालेज में इण्टर-मीडियट तक की शिक्षा और इसके साथ ही आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य रत्न' और भारत वर्षीय आर्य विद्या परिषद् अजमेर की 'वाचस्पति' उपाधियाँ प्राप्त कीं।
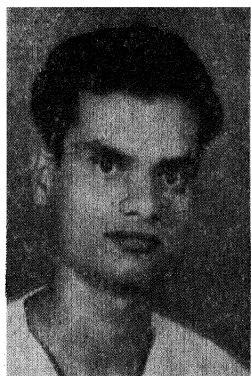
श्री विद्यार्थी आजकल केशव स्मारक आर्य विद्यालय हैदराबाद में अध्यापक हैं। साथ ही हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले हिन्दी साप्ताहिक 'संगम' के सहायक सम्पादक के रूप में भी कार्य कर रहे हैं।

श्री विद्यार्थी को साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों और ललितकला में रुचि है। आपने नृत्य-कला से सम्बन्ध रखनेवाली तेलुगु की एक पुस्तक "नर्तन बाला" का 'झनन झनन बाजे पायलिया' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया है। आजकल आप "ललित कलाओं के स्वरूप और विकास" पर 'साहित्य महोपाध्याय' के लिए प्रबन्ध की तैयारी में लगे हुए हैं।

श्री विद्यार्थी की बहुत-सी कविताएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'अगम पखेरू' नाम से प्रकाशित हो चुका है। निकट भविष्य में उनका "प्रेम का पंछी और मारुत के पंख" नामक कविता संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है।

चाँद आए न आए

मेरे मीत,
असमय घटाओं की घुमड़ में—
चाँद आए न आए;
अन्तर का दीप जला कर
रात काटनी होगी,
बीहड़ वन-पर्वत को पार करना होगा।

मेरे मीत,
मेरी प्रबल आस्थाएँ
तुम्हारी सबल प्रेरणाएँ
पथ चलने में
बहुत सहायक होंगी;
मंजिल के काँटे हटेंगे,
दूर बादलों की आड़
धुँधला चाँद मुस्कराएगा।

मेरे मीत,
तुम्हारी चिर स्मृतियाँ—
असीम, कल्पवृक्षों की छाया में
विश्राम कर रही हैं,
सारी कल्पनाएँ
स्वर्णिम प्रतीक्षा की डोर में—
बंध रही हैं।

मेरे मीत,
बंधने दो भावों को,

साकार होगा सुन्दरतम स्वप्न,
प्रिय होगा अपना यह बन्धन,
जो बहुतों को बन्धन-मुक्त करेगा,
दुख की उमड़ती हुई घटाओं पर
कशाघात करेगा।

मेरे मीत,
काजल सी कोठरी में
अपने आप के भरम में
दो आँसू बोझिल हैं अगर--
चुपचाप ढुलक जाएँगे
पर, क्या तुम्हारा रूप-गन्ध
शून्य दिशाओं में विलीन होगा ?

मेरे मीत,
जब प्रतीक्षाओं के अन्ध-कूप में
मेरे हाथ, रिक्तता का भास पाते हैं,
जब अनजान टटोलता—
सिहरतीं इन अंगुलियों से;
तब, धीरे से
तुम्हारे अनजाने मौन पुचकारों का
होने लगता है आभास,
जिसमें भरा है सच्चा प्यार
ऐसा प्यार;
जो मंजिल को निकट लाता है
जो मौत को नई ज़िन्दगी प्रदान करता है।

दो अंकुर

एक :

अहंकार का अग्नि-स्तूप
मेरे अन्तर को जलाता रहा।
किन्तु ताप सहा नहीं,
वेदनाओं से प्रस्रवित
स्मृतियों में
जन्में अश्रु-कणों ने
जलन मिटा दिए!
इन्हीं की बर्फीली सहानुभूतियों के सिंचन ने
तपे हृदय को शांत कर दिया!

दो :

अगर, मुझे तपाते हैं ये ताप
तो समझो—
मेरे जन्म जन्मांतरों के प्रतिफल
जो
नग्न रूप में प्रकट हो
चढ़ते जीवन के सोपानों पर
बिखर जाते हैं शूल बन कर,
अपने आप—
उन पीड़ाओं को सहना पड़ता है।
फिर, जन्म के दूसरे संस्कार पर
जीवन अपने आप—
सुन्दर साँचे में ढल जाता है!

श्री नैपालसिंह वर्मा

श्री नैपालसिंह वर्मा का जन्म सन् १९३८ में हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा सिटी कालेज हाईस्कूल हैदराबाद में हुई। तत्पश्चात् आपने उस्मानिया विश्वविद्यालय से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की।

श्री वर्मा आजकल सिकन्दराबाद हाईस्कूल में हिन्दी के अध्यापक हैं।

श्री वर्मा का झुकाव प्रारंभ से ही साहित्य की ओर रहा। आपने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित की हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'धारा बदल गई' नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

श्री वर्मा को छात्रों की समस्याओं में विशेष रुचि है। इस समय आप आन्ध्र प्रदेश हिन्दी विद्यार्थी संघ के उपाध्यक्ष एवं इस संघ द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'रचना' के सम्पादक हैं।

मौन रहोगे कब तक

मानवता के—
अखिल विश्व की,
मन्त्रोच्चारक भारत हे,
तुम मौन रहोगे कब तक ?
ढेर बादलों के गड़गड़ाहट भरे,
मौन सन्नाटा भी काँप रहा है—
विनाश की अँधेरी गुफ़ा में,
घटाटोप अँधेरा —
कुछ सूझता नहीं,
जाने कौन, किस से टकरा जाए।
युद्ध, ऊँची चोटियों से ताक रहा है,
जाने कब झपट ले,
शान्ति में पले हुए
कमसिन, मासूम मेमने को।
दौड़ रहे राकेट—
सिन्दूर पोंछते,
रौंदते चूड़ियाँ,
जाने कहीं रुकें भी या नहीं।
पागल विस्फोट बोझिल पगों से—
भाग रहा,
कुचलते हुए
पीड़ित मानव के
अष्टावक्र रेंगते बच्चों को।

रोको,
गड़गड़ाहट भरे युद्ध, राकेट और विस्फोट।
नहीं तो,
विनाश के धूएँधार बादल में,
गुम हो जाएगा सृजन,
अधूरे रह जाएँगे सपने,
पंचशील और अखिल विश्वके
और अकेला रह जाएगा,
एक ऐसा सन्नाटा,
जिसमें विनाश शान्त पड़ा,
ऊघता रहेगा सदियों तक....।

सन्देश पहुँचेगा

परदेश में रहने वाले,
दूर हो तुम आँखों से—
मीलों दूर।
इतनी दूर,
जहाँ से आवाज़ नहीं आएगी तुम्हारी,
और न जाएगी ही,
यदि मैं पुकार पुकार मर भी जाऊँ,
तुम्हें प्यार भेज रहा हूँ,
विश्वास है,
पहुँच भी जाएगा।

पहिले यह पहुँचता था--
हँसों की चोंचों में,
कबूतर के पंजों में,
और पवन के झकोरों में--
ऐसा सुनते और पढ़ते आए हैं।

पर यह बीसवीं सदी है,
अब यह पहुँचेगा,
धातु की रेल या विमान द्वारा,
एक पत्र पर,
मेरी अंगुलियों द्वारा अंकित,
हमारे जैसे ही,
विवश, अधभूखे और पराधीन,
एक पोस्टमैन के हाथ से
जो केवल साठ रुपए के लिए,
चप्पलें घिसता फिरता रहता है।
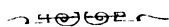
श्री सूर्य्यप्रताप सिंह

श्री सूर्य्यप्रताप सिंह का जन्म १ जुलाई, १६३६ को हुआ। आपने अपनी शिक्षा गाजीपुर तथा वाराणसी में प्राप्त की। आप क़रीब तीन वर्षों से हैदराबाद में नौकरी कर रहे हैं। साथ ही आप उस्मानिया विश्वविद्यालय के सायंकालीन महाविद्यालय के छात्र हैं और बी. ए. की तैयारी कर रहे हैं।

श्री सूर्य्यप्रताप सिंह, 'चकोर' उपनाम से कविता करते हैं। आपकी बहुत-सी कविताएँ, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपके गीतों का एक संग्रह 'मानदा' नाम से और एक खण्ड काव्य 'रुद्रश्मि' नाम से शीघ्र प्रकाशित होगा।

श्री सूर्य्यप्रताप सिंह को अध्ययन और विद्यार्थियों की समस्याओं में रुचि है। इस वर्ष आप सायंकालीन महाविद्यालय, हैदराबाद में हिन्दी संघ के अध्यक्ष हैं। साथ ही आप हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मिलाप के व्यवस्था-विभाग में कार्य कर रहे हैं।

तुम हमें रक्त दो—हम तुम्हें मुक्ति दें।

[नेता जी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों को सम्बोधित कर दिए गए ऐतिहासिक भाषण "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा" का संक्षिप्त भावानुवाद]

मन्त्र फूटा महावीर के कण्ठ से,
तुम हमें रक्त दो, हम तुम्हें मुक्ति दें।

ज्योत्स्ना ढल गई बन्द कर निज नयन,
गा उठे कवि-विहग, कर रहे थे शयन,
पूर्व प्राची खुला माँग सिन्दूर भर,
हो उठा जग सजग देख कर भास्कर,
स्वप्न ही देखते तुम रहे रात—भर,
मुस्कराता रहा जग तुम्हें देख कर,
तुम स्वयं आर्य की रक्त सन्तान हो—
तुम जगो वीर माँ का न अपमान हो,
मातृ तुम भक्त हो—विश्व विख्यात है,
भाव अपना तुम्हें क्या नहीं ज्ञात है,
माँ बँधी बेड़ियों में सुनो, रो रही,
भार, उर-वेदना के सतत ढो रही।

गा रहा देश है भैरवी तान में—
तुम हमें भाव दो, हम तुम्हें भक्ति दें।

आज रणक्षेत्र में रण-बिगुल बज रहा,
देश के वीर का वेष अब सज रहा,
यदि नहीं चाहते तुम विदेशी जुआ,

कांध से फक दो जो हुआ, सो हुआ,
अब नहीं चाहते हम पराधीन हों,
हम यही चाहते देश स्वाधीन हो,
कोटि चालीस जन का महा देश है,
शक्ति हममें अभी भी बहुत शेष है,
भार ढोया गया है सदा भार से—
सार भी यदि कटा सार के धार से,
कर्म सम्मुख न अब भाग्य का नाम लो,
शान्ति से अब नहीं शक्ति से काम लो।

गा रहा देश है भैरवी तान में—
तुम हमें रक्त दो, हम तुम्हें शक्ति दें।

तुम करो आज हुंकार क्यों मन्द स्वर,
लग गया है ग्रहण देश-मुख-चन्द्र पर,
माँ करों में बँधा तोड़ दो लौह-बन्धन,
यह पराधीनता कर रही रक्त-मंथन,
कष्ट में रो रहे वृद्ध-बालक हमारे,
विदेशी न प्रभु हैं न पालक हमारे,
हम नहीं चाहते अर्चना आरती माँ,
कि दो आज आशीष हे भारती माँ,
विजय प्राप्त कर हम पुनः माँ कहेंगे,
नहीं तो वहीं गोद में सो रहेंगे,
युद्ध-अभियान है माँ नमस्कार है,
देश की भक्ति का भाव साकार है।

गा रहा देश है भैरवी तान में—
तुम हमें यत्न दो, हम तुम्हें युक्ति दें।

गीत

बाट मेरी न देखो खड़ी पंथ में—
स्वप्न में हम मिलेंगे गगन-तीर पर।

ज्वलित साध को मैं लिए हूँ ज्वलन में—
न रोके रुकेगी—प्रभा विप्लवित।
वारि—सरि का विसर्जन करेंगे पलक—
हो उठेगी हृदय-वेदना—सम्प्लवित।

प्रभव के प्रभंजन प्रबोधित हुए तब—
खिली गीत कलिका नयन नीर भर।

शून्य उर में समाए सितारे—हँसे किन्तु—
सन्निधि जलन के प्रसन्निभ तपन है।
समुद्भूत जग वर्त्तिका-सम, समिध-सी—
समापन्न हवि का विमल विष्कलन है।

शिखा चूम कितने शलभ सो गए—
प्राण, मुस्कान कर, तू तनिक धीर धर।

धैर्य आधूति-मद से विचैतन्य हो कर—
उठा जो बढ़ा है, लुटा है, गिरा है।
जगत की लुटी जा रही है अमर गति—
ससत्वा तथा रत्न-धा भी धरा है।

याचनाएँ हमारी कहीं पर लुटीं—
मैं लुटा जा रहा हूँ विकल पीर पर।

नमश्चक्षु भाजन निरूपित गगन में--
नमश्च्मश प्रभा की मनोरम प्रमीला।
पुरोडाश पोषित, क्षितिज से पतत्—
पर्शुका की परिधि वृत्त की पूर्वशीला।

शून्य नभ, शून्य ही तो नहीं और क्या--
मैं दिखा दूँ गगन का हृदय चीर कर।
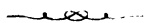
श्री ठाकुर रमेश कुमार

श्री रमेश कुमार का जन्म १२ जुलाई, १६३६ को हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में हुई और वहीं आपने निजाम कालेज से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की।
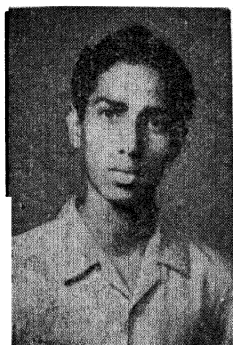
इस समय श्री रमेश कुमार, सागर विश्व-विद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम. ए. की तैयारी कर रहे हैं।

श्री रमेश कुमार को प्रारंभ से ही हिन्दी और संस्कृत साहित्य के अध्ययन में विशेष रुचि रहीं। सन् '५७ में आप निजाम कालेज से प्रकाशित होने वाली हिन्दी-पत्रिका 'सन्देश' और सन '५६ में उसी कालेज से प्रकाशित होने वाली संस्कृत-पत्रिका 'अमर वाणी' के सम्पादक रहे।

श्री रमेश कुमार ने सन् '५६ में अपनी पहली कविता 'आशा तुम सुन्दर हो' लिखी। उसके बाद से आपने अपनी बहुत सी कविताएँ स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं।

श्री रमेश कुमार को साहित्य के अतिरिक्त फोटोग्राफी और बढ़ई के कार्य में रुचि है।

तुम न गाना कभी गीत झनकार पर

मैं चला हूँ गगन-छोर की ओर अब,
तुम न गाना कभी गीत झनकार पर।

वेदना के अलापे हुए राग की प्रेरणा, प्राण बन कर चली थी मगर-
हो गया दैव का क्या न जाने असर, बीच में ही गयी टूट उसकी कमर,
अब उसी प्रेरणा को सहारा दिए एक आशा चली मुक्ति के द्वार पर,
मैं चला हूँ गगन-छोर की ओर अब,
तुम न गाना कभी गीत झनकार पर।

एक आँधी चली थी बवण्डर उठा, और सारी धरा से अँधेरा छँटा,
हो गया ज्ञात सच्चा मुझे पन्थ औ', मैं स्वयं मुक्ति के मार्ग पर आ डटा,
कल्पना के नगर आज खण्डहर बना, मैं चला हूँ स्वयं प्रेम बलिदान कर,
मैं चला हूँ गगन-छोर की ओर अब,
तुम न गाना कभी गीत झनकार पर।

मत बिछाना पलक तुम गगन-पंथ पर, जो गया वह कभी लौट आता नहीं,
शून्य था पूर्व जो, शून्य होगा पुनः, शून्य निज शून्यता को मिटाता नहीं,
है यही वह विवशता कि जिससे प्रिये, मैं चला जा रहा हूँ तुम्हें छोड़ कर,
मैं चला हूँ गगन-छोर की ओर अब,
तुम न गाना कभी गीत झनकार पर।

मत इसे तुम कभी वंचना मानना, सृष्टि से है नियम बस यही जानना,
अब कृपा कर करो तुम यही कामना, हो सफल आज मेरी नई साधना.
निज नवल-साधना की नवल-जय लिए, मैं चला विश्व से आज हूँ हार कर,
मैं चला हूँ गगन-छोर की ओर अब,
तुम न गाना कभी गीत झनकार पर।

पैर मेरे कहीं डगमगा जाएँगे

मैं चला जा रहा हूँ प्रगति-पन्थ पर, प्रेम का वास्ता दे न रोको मुझे,
तुम पुकारो नहीं अब क्षितिज पार से, पैर मेरे कहीं डगमगा जाएँगे।

मुक्त हो विश्व के बंधनों से स्वयं, सत्य है प्यार तुमने मुझे था किया,
माँग स्वीकार करके तुम्हारी तुम्हें, और मैंने स्वयं प्यार अपना दिया,
आज लेकिन मुझे छोड़ना पड़ रहा, विश्व-हित के लिए नेह के द्वार को,
याद करके तुम्हें चार आंसू बहा, मैं करूंगा सहन वेदना-भार को,
पर तुम्हीं मानतीं बात मेरी नहीं, कह रही यह न मुझ से सहा जाएगा,
साथ इतने दिवस तक कि जिसके रही, अब नहीं दूर उससे रहा जाएगा,
पर प्रिये, क्या तुम्हें है अभीप्सित नहीं, यह कि मैं कुछ प्रगति इस जगत में करूँ?
चाहती क्या नहीं तुम कि मैं विश्व के, काम आकर स्वयं नाम ऊँचा करूँ?
सत्य है बस वही प्रेम जिसमें कि हम, प्रेम के ही लिए प्रेम को त्याग दें,
प्रेमियों की प्रगति में रुकावट बने, प्रेम ही यदि हमारा उसे दाग दें।

इस लिए ही तुम्हें कह रहा आज मैं, याद मत उन दिनों की दिलाओ मुझे,
क्योंकि इससे बढ़ेगी बहुत वेदना, नैन मेरे बहुत नीर बरसाएँगे।

आज क्या मैं स्वयं हर्ष हूँ पा रहा, इस जगत में अकेली तुम्हें छोड़ कर,
सत्य मानो बहुत दुःख होता मुझे, आज सम्बन्ध यह नेह का तोड़ कर,
आज मेरा हृदय रो रहा है बहुत, और रोता रहेगा बहुत सर्वदा,
जान कर दुःख को मोलता आज पर, मान लूँगा यही भाग्य में था बदा,
हे प्रिये, आज पाषाण उर में धरे, स्मित-वदन से स्वयं तुम बिदा दो मुझे
जो सदा ही मुझे पंथ पर योग दे, बस वही आज शुभकामना दो मुझे,

और विश्वास रखो कि इक दिन कभी, है न संदेह इसमें कि मैं आन कर,
प्यार तुमको वही और दूँगा पुनः, तृप्त हूँगा तुम्हारा अधर पान कर,
है यदपि दीर्घ ही यह विरह पर इसे, तुम न मानो कभी भूलकर शाश्वत,
क्योंकि यह प्रेम का चक्र इस विश्व में, जन्म-जन्मान्तरों घूमता अनवरत।

इसलिए तुम स्वयं आज आशा बनो, भूलकर भी निराशा नहीं दो मुझे,
आज आशा अगर दे न आशा सके, क्या निराशा नहीं मेघ बरसाएँगे?

कुमारी शशि बाजपेयी

कुमारी शशि बाजपेयी का जन्म सन् १६४० में हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा हैदराबाद में ही हुई। आज-कल आप उस्मानिया विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय में बी. ए. की छात्रा हैं।

कुमारी शशि बाजपेयी ने कविता के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। आपको सन् '५८ में उस्मानिया विश्वविद्यालय अन्तर्महाविद्यालयीन हिन्दी-छात्र सम्मेलन द्वारा आयोजित कहानी-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

कुमारी शशि बाजपेयी को कविता और कहानी लिखने के अतिरिक्त सितार-वादन में रुचि है।

कुरूपा का अन्तर

दीपक की
टिमटिमाती,
जलती,
प्रकाश देती,
बाती को
देखा तुमने,
उसकी
लौ पर
कुर्बान हुए
हे पखी,
पंख विहीन
हुए तुम ।
किन्तु
मेरे इस
दग्ध-हृदय को
जो
जल-जल कर
बुझ ही
गया है,
धुँवा उठ रहा है
केवल मात्र,
जो प्रेम के
स्मारक-सा
बाकी है,
शेष है,
जलने की
बात दूर
किसी ने
आँख उठा कर
देखा तक
नहीं ।
आँखों में
रस भरा;
ज्योति भरी,
किन्तु
परवाना
न आया
कोई
आखिर क्यों ?
अन्तर से
कोई बोल उठा
अति कर्कश—
"तुम में
वह रूप कहाँ ?
वह चिर-प्यास कहाँ
तुम हो सौम्य
तुम में
वह ज्योति

नहीं आ पाएगी
जीवन भर
जो
भस्म करे

परवाने को
और बस—
मौन हो गया
अन्तर।

·········

प्रथम-पराजय

जीवन में जो था प्राप्य;
वह आया,
आकर हुआ समर्पित निःशब्द,
रूप, गंध, संस्पर्श
मिले, सभी अयाचित
किन्तु रही प्यास—
कुआँरी की कुआँरी।
हाय, पाने खोने में इतना वैविध्य,
सिसकती रही उम्र भर मैं,
निष्फल रही साधना मेरी,
रीता का रीता रहा—
अन्तर कलश मेरा,
प्राप्य भी अप्राप्य रहा—
निष्ठुर विडम्बना यह।

× × ×

दूर कहीं बहुत दूर—
हरे भरे खेतों के पास ही

नन्हीं सी कुटिया में
श्रम-सपूत की झोंपड़ी में
ध्रुवतारा-सा मेरा पावन आराध्य
किन्तु सम्भव भी असम्भव है
इससे अपरिचित थी।
सोचा फिर एक बार
धन मन का आखिर संघर्ष क्यों?

× × ×

शक्तियाँ क्षीण हुईं,
चेतना विलुप्त हुई,
अन्तर पसीज गया,
सत्य ने करवट ली
और
नयनों ने चरण पखारे यथार्थ के,
बरबस यह ज्ञान हुआ
यही तो जीवन की--
प्रथम पराजय थी।

कुमारी पुष्पा श्रीवास्तव

कुमारी पुष्पा श्रीवास्तव का जन्म सन् १९४० में हैदराबाद में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा सर बन्सीलाल बालिका विद्यालय में हुई। तत्पश्चात् आपने महिला महाविद्यालय, हैदराबाद से पी. यू. सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। कुमारी पुष्पा आजकल उस्मानिया विश्वविद्यालय के विज्ञान महाविद्यालय में बी. एस. सी. की छात्रा हैं।
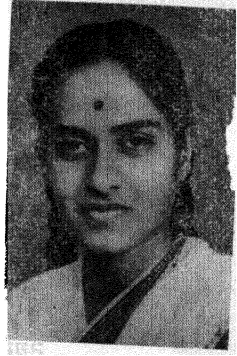
कुमारी पुष्पा का झुकाव प्रारंभ से ही कविता लिखने की ओर था। आपने पहली कविता 'बापू के प्रति' सन् १९५२ में लिखी, जिसे आकाशवाणी हैदराबाद ने प्रसारित किया।

कुमारी पुष्पा ने स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में बहुत सी कविताएँ प्रकाशित की हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'स्मृति के दीप' नाम से शीघ्र प्रकाशित होगा।

कुमारी पुष्पा को कविता के अतिरिक्त चित्रकला और फोटोग्राफी में रुचि है।

समर्पण

निशि के गहन अन्धकार में-
तिमिरावृत होता संसार,
शशि-तारों के प्रभा-पुंज में-
होता दिन का विभव निसार।

निद्रा की मीठी थपकी से-
जग, दिन की अतुल थकान लिए
सोता रजनी की गोदी में,
जीवन की मधु-मुस्कान लिए।

चिर अन्धकार के शासन में
डूबा मेरी कुटिया का लोक,
तब इस क्षुद्र दीपिका से ही
करती हूँ गृह में आलोक।

निशि की नीरवता में भी,
मिलती मुझ को शान्ति नहीं,
शंका रहती है क्या आए
कुटिया में करुणेश कहीं।

विकल प्रतीक्षा में बैठी हूँ,
दूँगी तुमको क्या उपहार?
छिन्न-भिन्न इस मन-वीणा के,
झंकृत कर देती हूँ तार।

सुन कर झंकृत क्षीण-स्वरों को
रुक न सकोगे तुम करुणेश,
तो मैं चरणों में रख दूँगी
जीवन के मृदु क्षण अवशेष।

रात बीती, प्रात जागा

डूबा स्वर्णिम दिन का विकास,
दिनकर किरणें ले बिदा हुआ,
नीलाभ गगन के आँगन में–
चम्पा-सा आँचल बिछा हुआ।

प्राची के लोहित आँगन में–
अवतरित हुई संध्या सुकुमारी,
दूर कहीं पर ग्राम-वधू ने–
दीप जला आरती उतारी।

वन-घाटी, महल-कुटीर ढके
संध्या के धूमिल आँचल में,
मानों युग-युग के तपसी हों
बैठे समाधि-मय आसन में।

फिर नभ के मुक्ता-दीप जले
तब आई निशि शृंगार किए,
तारों के बिखरे आँगन में,
आई रजनी अभिसार लिए।

रजनी का नीरव शासन भी
कब काल-चक्र के मन भाया?
तम की काली जंजीर तोड़
मुस्काता उजियाला आया।

जागा उज्वल मंजुल प्रभात,
मलया झकोरने आई है,
निशि-नयनों के बिखरे आँसू–
लो उषा बटोरने आई है।